ओ३म् तत्सत्।

कृष्णयजुर्वेदीय

श्वेताश्वतरोपनिषत्।

ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन
भीमसेनशर्मणा कृतया संस्कृत
टीकया भाषा टीकया
चोपेता।

द्वितीयवार १००० } सन् १९१६ ई० { मूल्य ।।।)

Printed and Published by Pandit
Brahmadeva Sharma at the
Brahma Press Etawah.

अथ श्वेताश्वतरोपनिषद्प्रस्तावः ।

कृष्णयजुर्वेदस्य षडशीतिशाखासु श्वेताश्वतरशाखान्तर्गतेयमुपनिषदवगन्तव्या । यद्यपि वाजसनेयादिदशोपनिषद एवाधिक्येन लब्धास्पदाः सन्ति तथाप्यस्यामुपनिषदि प्रसिद्धवेदमन्त्राणामाधिक्येन रक्षणाद् ब्रह्मात्मज्ञानविषयस्य स्फुटतया वर्णनाच्चास्या उपनिषदो महत्त्वं सुस्थिरमेव । अस्यामुपनिषदि कस्यापीतिहासः कठोपनिषदादिवत्प्रधानो नास्ति किन्तु वेदान्तविषयस्यात्मतत्त्वज्ञानस्यातिसुगमतया व्याख्यानमुपलभ्यते । अत्रोपनिषदि यद्यपि सर्वाणि पद्यानि सन्ति न कश्चिद्गद्यो भागस्तथापि येऽल्पीयसीमपि संस्कृतभाषां विदन्ति तेऽत्रत्याधिकतरपद्यानां मूलादेवार्थं बोद्धुं क्षमाः सम्भवन्ति । भाष्यन्तु विशेषेण तात्पर्यबोधनाय किञ्चिदपि संस्कृतमविजानतामर्थज्ञानाय दुर्ज्ञेयच्छन्दसामर्थस्य स्फोटनाय च मयारब्धम् ॥

अस्यामुपनिषदि षडध्यायास्तत्राद्येऽध्याये कालादीनामेकैकशः सम्भूय वा कारणत्वं निराकृत्यैकस्य, परमात्मनएवाभिन्ननिमित्तोपादानकारणत्वमुपपाद्य तस्य स्वदेहस्थस्यैव ध्यानेन सदृष्टान्तेन साक्षात्कारपुरस्सरं मोक्षोपायः प्रदर्शितः। द्वितीये योगाभ्यासद्वारा सवितुर्देवस्योपासनमुक्तं तृतीयचतुर्थयोः स्तुतिप्रार्थनापुरस्सरं परेशस्य विशेषेण स्वरूपं गुणाः कर्माणि चोक्तानि । पञ्चमे जीवस्य बन्धकारणप्रदर्शनपुरस्सरं स्वीयवास्तवस्वरूपपरमात्मतत्त्वस्यज्ञानेनाखिलबन्धेभ्यो विमुक्तिरुक्ता षष्ठे कालादीनां कारणत्वं निराकृत्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्यैकस्यात्मतत्त्वस्यैव निर्गुणस्यापि सर्वकारणत्वं तद्विज्ञानेनैवाखिलबाधाभ्यो मोक्षश्चोक्तइति । इत्थमस्यामुपनिषदि विशदरीत्या परमात्मतत्त्वज्ञानेन सर्वविधदुःखनिवृत्तिसाधनपुरस्सरं परमानन्दावाप्तिरूपाऽभीप्सितसिद्धिः प्रदर्शिता सा च योगाभ्यासद्वारा विशेषतो दृष्टानुश्राविकविषयवितृष्णेन लब्धुं शक्या ॥

भाषार्थः-पूज्यपाद भगवान् शङ्कर स्वामिकृत (उपनिषद्भाष्य) व्युत्पन्न विद्वानों के लिये विशेष उपयोगी है, हमने साधारण संस्कृतज्ञों के अर्थ और विशेष कर हिन्दीभाषा मात्र जानने वालों की सुगमता के लिये समयानुसार प्रचरित सुगमसंस्कृत और हिन्दीभाषा में इस कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतरोपनिषद्का सुगम व्याख्यान किया है। कृष्णयजुर्वेदकी छयाशी ८६ शाखाओंमें से श्वेताश्वतरशाखाके अन्तर्गत यह उपनिषद् है। यद्यपि वाजसनेयादि दश ही उपनिषद् विशेष प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हैं, तथापि अध्यात्म प्रसिद्ध वेदमन्त्रों के इस उपनिषद्में विशेष कर संगृहीत होनेसे और आत्मतत्त्वज्ञान विषय का स्फुट प्रकार से वर्णन होनेसे इस श्वेताश्वतरोपनिषद्का महत्त्व भी प्रसिद्ध है। कठोपनिषदादिके तुल्य इस उपनिषद्मे किसी का इतिहास प्रधान नहीं है किन्तु आत्मतत्त्वज्ञानरूप वेदान्तविषय का विशेष सुगमतासे वर्णन किया है। इस उपनिषद्में सब पद्यरचना ही है गद्यभाग कुछ नहीं है, तथापि जो लोग थोडा भी संस्कृत जानते हैं वे भी मूलके सरल होने से मूलको ही समझ सकते हैं। तात्पर्य जतानेके अर्थ और जो कुछ नाममात्र संस्कृत जानते हैं उन को अर्थ जाननेके लिये और कठिन छन्दोंका अर्थ प्रकट करनेके लिये ही हमने भाष्य किया है॥

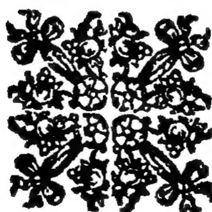
इस उपनिषद् में छः अध्याय हैं उन में से प्रथमाध्यायमें कालादिका पृथक् २ वा सम्मिलित कारण होनेका खण्डन करके और एक परमेश्वरको ही निमित्त तथा उपादान कारण सिद्ध करके उस अपने २ शरीरस्थ परमात्मतत्त्व को साक्षात् जानने द्वारा मोक्षका उपाय दृष्टान्त सहित ध्यानसे दिखाया है। द्वितीयाध्यायमें योगसाधन द्वारा सवितादेवकी उपासनाका ही, तृतीय चतुर्थ अध्यायो मे स्तुति प्रार्थना पूर्वक परमेश्वर के विशेष कर गुण कर्म और स्वरूपों का वर्णन किया है। पञ्चमाध्याय में बन्धन का कारण दिखाने पूर्वक अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मतत्त्वके जानने द्वारा सम्पूर्ण,ब-

न्धनोंसे छूटना कहा और षष्ठाध्याय में कालादि के कारण होने का निराकरण करके नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव एक निर्गुण आत्मतत्त्वको सब संसार का कारण कहा और उस के सम्यक्ज्ञानसे ही सब प्रकारकी बाधाओंसे छूटनेका वर्णन किया है। इस प्रकार इस उपनिषद् मे सब प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति होने पूर्वक परमेश्वरके तत्त्वज्ञानसे सरल प्रकारसे परमानन्द प्राप्ति रूप अभीष्ट सिद्धि दिखादी गयी है इस भूलोक के और स्वर्गादि के दिव्य सुख भोगने से हुए वैराग्यवान् पुरुष को यह सिद्धि योगाभ्यास द्वारा विशेष कर प्राप्त हो सकती है॥

निवेदको–

भीमसेन शर्मा

ब्राह्मणसर्वस्व–सम्पादकः



ओ३म्—श्रीमहागणाधिपतये नमः

अथ कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यम् ।

ओ३म्—ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।
किं कारणं ब्रह्म, कुतः स्म जाता,
जीवाम केन, क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन, सुखेतरेषु वर्ता-
महे, ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥ १ ॥

अ०—ब्रह्मवादिनो महर्षयो वाग्व्यापारेणान्यवाच्यापेक्षया ब्रह्मैवाधिक्येन वदितुं शीलाः शुद्धाः पुरुषाः परस्परमेकीभूत्वा वदन्ति । अस्य चराचरदृश्यस्य किं ब्रह्म कारणमाहोस्वित्कालादिकारणमिति । अथवा—अकारणमिदं जगत् । अथवा ब्रह्मणः कारणत्वेऽपि किमुपादानकारणं ब्रह्माहोस्विन्निमित्तमथवोभयमिति प्रश्नः तच्च ब्रह्म किं लक्षणमस्ति । कुतो वयं जीवा जाताः स्म केन कारणेन वयं शरीरधारिणः कृताः, चिदात्म-

स्वरूपेण, जीवानां नित्यत्वाच्छरीरधारिणामेवोत्पत्तौ प्रश्नाशयः । केन च कारणभूतेन स्थितिकाले वयं जीवामः, क्वचाधारभूते प्रलयाद्यवसरे वयं प्रतिष्ठिता भवामः । केनाधिष्ठिता नियता वयं सुखेष्वितरेषु दुःखेषु च वर्त्तामहे । हे ब्रह्मविदो ब्रह्मज्ञानिनः ! भवत्कृपातो वयमेतां व्यवस्थां लभेमहि जानीयाम ॥

भा०—अत्र पञ्च प्रश्नास्तेषु प्रथमः सर्गारम्भे संसारस्य कारणजिज्ञासायां, द्वितीयः प्रकृतिपुरुषसंयोगहेतुजिज्ञासायां, तृतीयः स्थितिदशायां कारणं ज्ञातुं, चतुर्थः प्रलयावस्थायां कारणं ज्ञातुम् । पञ्चमश्च कर्मफलाप्तौ कारणं विज्ञातुमेवं च सर्वदैवतत्त्वं ज्ञातुं मनुष्यैरीक्षणमारब्धव्यमित्याशयः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ब्रह्मवादिनो वदन्ति) वाणी के व्यवहारसे ईश्वर विषय की ही अधिक चर्चा करने के स्वभाव वाले शुद्ध महर्षि लोग परस्पर मिलकर विचार करते वा कहते हैं कि इस चराचर संसार का (किं कारणं ब्रह्म ?) क्या ब्रह्म ही कारण है ? अथवा अन्य कोई कालादि कारण है ? वा इस जगत् का कोई कारण ही नहीं । अथवा यह भी प्रश्न का अर्थ हो सकता है कि इस जगत के उपादान निमित्तों में से ब्रह्म कौन कारण है ? वा दोनों कारण ब्रह्म है और उस ब्रह्म का क्या लक्षण है (कुतो जाताः स्म) हम सब

शरीरधारी जीव किससे उत्पन्न हुए हैं ? वास्तविक स्वरूपसे जीव नित्य हैं, इस कारण शरीर धारण सम्बद्ध जीवों का प्रश्न जानो । (केन जीवाम) हम सब किस की सत्ता से जगत् की स्थिति दशा में जीवित रहते हैं ? (क्व च सम्प्रतिष्ठाः) और प्रलयादि के समय किस आधार पर हम सब रहते ? (केनाधिष्ठिताः सुखेतरेषु वर्त्तामहे) और किस से नियत किये हुए हम लोग सुख दुःखों में प्रवृत्त हो रहे हैं अर्थात् हमको सुख दुःख कौन भुगाता है ? हे (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी लोगो ! हम सब लोग (व्यवस्थाम्) इस विषय की व्यवस्था अर्थात् समाधान को आप की कृपा से ठीक २ जानें वा जान सकें ।

भा०—इस आरम्भ के मन्त्र में पांच प्रश्न हैं उन में पहिला सृष्टि के आरम्भ समय संसार का कारण जानने की इच्छा से, दूसरा प्रश्न प्रकृति पुरुषके संयोग का हेतु जानने के लिये, तीसरा जगत् की स्थिति दशा का कारण जानने को, चौथा प्रलयादि दशा में जीव का आधार जानने और पांचवां कर्मफल प्राप्ति में कारण जानने के लिये है । इसी प्रकार सब काल में सभी विचारशील विद्वान् मनुष्यों को गूढ़ विषयों का ठीक तत्त्व जानने के लिये समीक्षण वा आन्दोलन करना चाहिये ॥ १ ॥

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् । संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माऽप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥

अ०—कालः सर्ववस्तूनां विपरिणामहेतुः, स्वभावोऽग्नेरुष्णत्वादिकरूपा पदार्थानां नियता शक्तिः । नियतिः पुण्यपापलक्षणं नियतविपाकं संचितं कर्म, यदृच्छा आकस्मिकव्यकारणप्राप्तिः, भूतान्याकाशादीनि, पुरुषो विज्ञानात्माऽस्य सर्वस्य योनिः कारणमाहोस्विदेषां कालादीनां संयोगो योनिरिति विमर्शे प्रवृत्ते न योनिरिति पदद्वयं प्रत्येकेन कालादिना सम्बध्यते । कालो न योनिः स्वभावो न योनिरित्येवम् । सुखदुःखहेतोः स्वकर्मोपार्जितेष्टानिष्टफलभोगेषु बद्धत्वादनीशः पराधीन आत्मापि जीवोऽपि न योनिरात्मभावादात्मत्वेन सर्वव्याप्तत्वेन सर्वनियन्तृत्वेन न कोऽपि कालादिर्जीवो वास्य कारणमिति ॥

भा०—यद्यपि कालादीनि पृथक्पृथङ्मिलित्वा वाऽस्य जगतो निमित्तान्युपादानानि वा कानिचित्कारणानि भवन्ति । तथापि तेषां स्वयमसत्त्वादन्यसत्तापेक्षत्वात्पराधीनत्वात्सातिशयशक्तिमत्त्वान्निरतिशयशक्तिमदेव सर्वनियन्तृ किमपि कारणानामपि तेषां कारणं सम्भवत्येतच्च नत्वात्मभावादिति कथयता सूचितम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा) क्षणादि काल सब के परिवर्त्तन बदलने का हेतु स्वभाव—जैसे अग्नि की उष्णता अर्थात् अग्नि का स्वाभाविक गुण जैसे उष्णता गर्मी है वैसे पदार्थों की स्वाभाविक शक्ति, पुण्य पाप रूप नियतफल को अवश्य देने वाला संचित वासनारूप कर्म्म अथवा यदृच्छा नाम अकस्मात् विना कारण ही संसार उत्पन्न हुआ, (भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्) आकाशादि सूक्ष्म भूत अथवा पुरुष नाम जीवात्मा, क्या इन कालादि में से कोई एक २ इस प्रत्यक्ष जगत्का योनि नाम कारण है ? अथवा (एषां संयोगः) इन सबका सयोग सृष्टि का कारण है ? ऐसे विचारकी प्रवृत्ति में (न) नहीं अर्थात् कालादि एक २ वा इन का सयोग दोनों ही सृष्टिके कारण नहीं अर्थात् (आत्मभावात्सुखदुःखहेतोरात्माप्यनीशः) जैसे अपने संचित दुष्ट कर्म फल भोगोंसे फंसा होने से जीवात्मा पराधीन हुआ किसी कार्य का स्वतन्त्र कारण नहीं होता वैसे पराधीन कालादिक भी सृष्टि के कारण नहीं हो सकते क्योंकि इनमें सर्वत्र व्याप्त सर्वनियन्तृता सब को अपने आधीन कर लेनेकी अनन्त शक्ति नहीं है। अर्थात् कालादि जड़ चेतन आत्मभाव नाम सर्वव्याप्त न होने से प्रबलता वा प्रधानता के साथ स्वतन्त्र सृष्टिके कारण नहीं किन्तु पराधीनतासे गौण कारण तो अवश्य हैं यह बात (आत्मभावात्) पद से जताया है ॥

भा०—यद्यपि कालादि जड़ और चेतन जीवात्मा ये दोनों ही पृथक् २ वा मिलकर इस जगत्के निमित्त वा उपादान भिन्न २ कारण गौणरूपसे हो सकते हैं जिसमें काल, नियति, यदृच्छा और जीवात्मा ये निमित्त तथा स्वभाव और भूत सृष्टि के उपादान कारण हैं। तो भी उनके स्वयं

असत् होने के कारण अन्य सदात्मक ब्रह्म की सत्ता की अपेक्षा होने से और पराधीन होने तथा परिमित अल्प शक्ति वाले होने से असीम अपरिमित शक्तियुक्त कोई सर्वनियन्ता ही उन कालादि कारणों का भी कारण ठहरता है यह बात (न त्वात्मभावात्) कहनेसे जतायी गयी है। अर्थात् एक परमेश्वर ही सब का मूल प्रधान कारण है क्योंकि उस के विना काल प्रकृति और जीवादि कारण सब मिल कर भी सृष्टि नहीं कर सकते ॥ २ ॥

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥३॥

अ०-एवमुक्तप्रकारेण कारणान्तरवादपक्षान्निराकृत्य वेदैकवेद्ये ब्रह्मणि प्रकारान्तरमपश्यन्ती श्रुतिराह—यएकोऽद्वितीयः परमेश्वरः कालात्मयुक्तानि कालेन जीवात्मना पुरुषेण च संयुक्तानि निखिलानि तानि कारणानि द्वितीयमन्त्रोक्तानि स्वभावादीन्यधितिष्ठत्यधिष्ठातृत्वेन नियमयति। तस्यैव परमात्मनः स्वगुणैः प्रकृतिकार्यैः पृथिव्यादिपञ्चभूतैश्च निगूढां संवृतामाच्छन्नां देवात्मशक्तिं ध्यानयोगानुगता ध्यानरूपं योगं ध्येयस्वीकारो-

प्रोयमनुगता ध्येयाकारपरायणाः समाहिता-
स्ते पूर्वोक्ता ब्रह्मवादिनो महर्षयो जगतो
निर्मात्रीमपश्यन् हार्दचक्षुषा दृष्टवन्तः। तत्र
देवात्मशक्तिमित्यस्य समासव्यासौ बहुधा स-
म्भवति तद्यथा—देवस्य मायिनः परमेश्वर-
स्यात्मस्वरूपामेवाऽस्वतन्त्रां मायाशक्तिं ज-
गतः कारणभूतामपश्यन्त। अनेनैवाभिप्राये-
णाग्रेऽस्मिन्नेव ग्रन्थ उक्तम्—मायांतुप्रकृतिंवि-
द्यान्मायिनंतुमहेश्वरमिति। भगवद्गीतासू-
क्तम्—मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयतेसचराचरमि-
ति। अत्रापि मायाशक्तिरस्वतन्त्रा ब्रह्मसत्त-
यैवावस्थिता च स्वगुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्नि-
गूढाऽऽवृतामायाशक्तिर्गुणाख्यानावृताः। इत्ये-
कः पक्षः। अथवा देवात्मशक्तिं देवतात्मना—
ईश्वररूपेणावस्थितां शक्तिं स्वगुणैः सर्वज्ञ-
त्वादिभिरीश्वरगुणैर्निगूढां ब्रह्मात्मनैवानुप-
लभ्यमानाम्। तत्रोक्तम्—मायीसृजतेविश्वमे-
तदित्यादि। इति द्वितीयः पक्षः। अथवा दे-
वस्य परमेश्वरस्यात्मभूतां जगदुत्पत्तिस्थि-
तिलयकर्त्रीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकां शक्तिं स्व-
गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्निगूढां ब्रह्मात्मनैवानु-

पलभ्यमानाम् तथाचोक्तम्—ब्रह्मविष्णुशिवा-ब्रह्मन् ! प्रधानाब्रह्मशक्तयइति । शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः । अवस्थाभेद-माश्रित्य परस्यैव ब्रह्मणः सृष्ट्यादिकार्यं कु-र्वन्ति । मूर्त्तिमद् ब्रह्मैव ब्रह्मविष्णुशिवनाम-रूपैः सृष्ट्यादिकं करोति नतु ब्रह्मादयस्ततो भिन्नाः स्वतन्त्राइति । इति तृतीयः पक्षः । अथवा देवात्मशक्तिमिति—देवश्च—आत्मा च शक्तिश्च यस्यब्रह्मणस्त्रयोऽवस्थाभेदास्तां प्रकृतिपुरुषेश्वराणां स्वरूपभूतां ब्रह्मरूपेणावस्थितां शक्तिं कारणमपश्यन् । तच्चाग्रेप्रदर्शितम्—भोक्ताभोग्यं प्रेरितारंचमत्वा सर्वंप्रोक्तंत्रिवि-धंब्रह्ममेतदिति । स्वगुणैः प्रकृत्याद्युपाधिभि-र्निगूढां शक्तिम् । एकोदेवःसर्वभूतेषु गूढइ-त्युक्तत्वात् । इति चतुर्थः पक्षः । अथवादे-वस्य प्रकाशस्वरूपस्यात्मनो व्यापकस्य पर-मेश्वरस्य स्वरूपभूतां दैवीशक्तिं स्वगुणैर्नि-गूढां जगतः कारणमपश्यन्निति पञ्चमः पक्षः ॥

भा०—देवात्मशक्तिरूपे समस्तपदे ये पक्षाः प्रदर्शितास्ते शास्त्रानुकूलतया सर्वे सम्यगेवाभिमतावोध्याः । सर्वपक्षेष्विदमैक्य-

मनुसन्धेयम्—यद्ब्रह्मसत्तयैव सदिवप्रतीय-
मानं ब्रह्माधिष्ठितं बहुविधं कारणमस्वतन्त्रं
निमित्तोपादानभूतमस्ति तस्य सर्वस्य स्वातन्त्र्ये-
णाचेतनत्वादशक्यत्वान्मुख्यतया जगदुत्पा-
दकत्वं नास्त्यपित्वेकस्यैव सर्वशक्तिमतः पर-
मात्मनः सत्तया जगज्जायते तस्मात्तस्यैव
जगदुत्पादकत्वमभिज्ञा वेदाभिमतं मन्यन्ते।
अस्य तृतीयमन्त्रस्याशयोऽयमस्ति—यद्वर्त्त-
मानकालेऽपि सूर्यादीनामुदयास्तादिनियमाः
प्रत्यक्षमुपलभ्यन्ते प्रत्यहं चोत्पत्तिस्थिति-
लयाः पदार्थानां जायमाना ये दृश्यन्ते तेषां
कारणान्यपि बहूनि प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते प-
रन्तु सर्वपदार्थेषु गूढाऽतिसूक्ष्मा चर्मचक्षुर्भ्या-
मलक्ष्या सर्वनियन्त्री काचिच्छक्तिरस्ति यया
नियन्त्रिताश्चराचरपदार्था नियमेन प्रवृत्ता
दृश्यन्ते तस्याश्च पाश्चात्यादयो विद्वांसः कि-
मपि नामान्तरं वदन्तु। तामेव देवात्मशक्तिं
परमात्मस्वरूपं सर्ववस्तुषु गूढां तत्तन्नामरू-
पावच्छिन्नामखिलपदार्थान्तः प्रविष्टामखिल-
क्रियाकारिकामुत्पत्त्यादेः प्रधानकारणभूता-

मतिप्राचीनकालेऽपि ब्रह्मवादिनो महर्षयो ध्यानयोगेन दृष्टवन्तो ज्ञातवन्तइति ॥

भावार्थ–इस उक्त प्रकार से सृष्टि रचना के अन्य कारण वाद पक्षोंका निषेध करके एक वेदके ही द्वारा जानने योग्य ब्रह्म में अन्य कारण को न देखती हुई श्रुति कहती है कि= (य एक॰ कालात्मयुक्तानि निखिलानि तानि कारणानि अधितिष्ठति) जो एक अद्वैत परमेश्वर काल और जीवात्मासे युक्त उन द्वितीय मन्त्र में कहे स्वभावादि सब कारणों को अधिष्ठाता रहता हुआ नियम बद्ध करता है। उसी परमेश्वर की (स्वगुणैर्निगूढाम्) प्रकृति के कार्य महत्तत्त्वादि और पृथिव्यादि पंचमहाभूतो से छिपी वा ढपी हुई (देवात्मशक्तिम्) परमात्म देव की आत्मस्वरूप शक्ति को (ध्यान योगानुगताः) ध्यानरूप योगाभ्यास में तत्पर ईश्वर प्राप्तिके उपाय में संलग्न-ईश्वर परायण समाहित हुए (ते) उन ब्रह्मवादी महर्षियों ने जगत् की रचनेवाली (अपश्यन्) हिये की आंखो से देखा वा जाना ॥

देवात्मशक्ति–इस समस्त पद का अनेक प्रकार से समास हो सकता है सो दिखाते हैं। देवनाम मायाके स्वामी परमेश्वर की आत्मस्वरूप अस्वतन्त्र पराधीन मायाशक्ति को जगत् कारण ब्रह्मवादियों ने देखा जाना। इसी अभिप्राय को आगे इसी ग्रन्थमें दिखाया है कि माया नामक प्रकृति को जगत् का उपादान जानो और माया का स्वामी अधिष्ठाता परमेश्वर है। तथा भगवद्गीता में भी कहा है कि मुझ ईश्वर की अध्यक्षता में प्रकृति माया चराचर जगत् को रचती है। यहां भी माया शक्ति अस्वतन्त्र और ब्रह्म की सत्ता से अव्यभिचरित सम्बन्ध है। सत्त्व, रज और तमोगु

र्यों से वह माया रूपी हुई है पर गुण प्रसिद्ध है यह एक पक्ष हुआ। द्वितीय पक्ष यह है कि--देवात्मरूप जो परमेश्वर उसी रूप से विद्यमान सर्वज्ञत्वादि ईश्वरीय गुणोंके सहित छिपी हुई अर्थात् ब्रह्म स्वरूपसे प्रतीत न होती हुई शक्तिको ध्यानसे देखा। उसी अंशमें कहा है कि मायाधिष्ठाता भगवान् इस जगत्को बनाता है। यह द्वितीय पक्ष हुआ।

अथवा संसारकी उत्पत्ति स्थिति लय करने वाली ब्रह्मा विष्णु शिव नामकी देवनाम परमेश्वरकी आत्म रूप शक्तिको देखा, वह शक्ति अपने सत्वरजस्तमोगुणोंसे आच्छादित होनेके कारण ब्रह्म स्वरूपसे प्रतीत नहीं होती। ब्रह्मा विष्णु शिव ये तीनों ब्रह्मकी प्रधान शक्तियां हैं। अवस्था भेदके आधार पर ये शक्तियां परमेश्वरके ही सृष्टि आदि कामको करती हैं। वा यों कहो कि साकार परमेश्वर ही ब्रह्मादि नाम रूपोंसे संसारकी उत्पत्ति आदि करता है। एक ब्रह्मसे भिन्न स्वतन्त्र ब्रह्मादि देव नहीं हैं। यह तीसरा पक्ष हुआ। अथवा जिस ब्रह्मके देव ईश्वर जीवात्मा, और माया शक्ति ये तीन अवस्था भेद हैं उस प्रकृति पुरुष और ईश्वर रूप, ब्रह्म रूपसे अवस्थित शक्तिको जगत्का कारण ब्रह्मवादियोंने जाना। इस बातको भोक्ता जीव, भोग्य प्रकृति और प्रेरक देव ईश्वर ये तीनों ब्रह्म स्वरूप हैं ऐसा आगे इसी ग्रन्थमें कहा है। यह त्रिविध शक्ति भी प्रकृत्यादि उपाधियोंसे गूढ़ है। एक ही परमेश्वर सब चराचरमें छिपा है ऐसा भी आगे कहा है यह चतुर्थ पक्ष हुआ। अथवा ज्योतिः स्वरूप व्यापक परमेश्वरकी स्वरूप भूत देवी शक्तिको अपने गुणोंसे आच्छादित जगत्का कारण ब्रह्मवादियोंने ध्यानसे देखा॥

भावार्थः—देवात्म शक्ति इस समास किये पदमें जो पक्ष ऊपर दिखाये हैं वेदानुकूल होनेसे उन सभी को ठीक जानो

तथा सब पक्षोंमें निम्न लिखित एकता भी है कि ब्रह्मकी सत्तासे ही सत्तात्मक प्रतीत होने वाला ब्रह्मसे अधिष्ठित अस्वतन्त्र निमित्त तथा उपादान रूप जगत्का बहुविध कारण है। उन सब कारण में स्वतन्त्र चेतनता और शक्ति न होनेसे मुख्य कर संसारका उत्पादक नहीं होता किन्तु सर्व शक्तिमान् एक परमेश्वरकी सत्तासे जगत्की उत्पत्ति होती है जिससे उसी ईश्वरको जगत्का उत्पादक वेदानुकूल होनेसे विद्वान् लोग मानते हैं। इस तृतीय मन्त्रका अभिप्राय यह है कि वर्त्तमान कालमें भी सूर्यादिके उदय तथा अस्तादि होनेके नियम अटल दीखते है और सब पदार्थोंके कः उत्पत्ति स्थिति प्रलय भी प्रतिदिन होते दीखते है उनके अनेक कारण भी प्रत्यक्ष मिलते हैं। परन्तु सब पदार्थोंको नियममें रखने वाली अतिसूक्ष्म चर्म चक्षुसे अदृश्य छिपी हुई सर्व नियन्त्री कोई एक शक्ति है जिससे नियमित हुए चराचर पदार्थ नियत प्रवृत्ति वाले दीखते है। अर्थात् जहां तक शोच विचारके हम पदार्थोंको जान सकते हैं उन सबसे भिन्न अति सूक्ष्म सबमें गूढ एक अन्य भी शक्ति नाम रूप रहितहै। पाश्चात्यादि विद्वान् उस शक्तिका कुछ भी नाम कहें परन्तु हमारे पूर्वज महर्षियोंने परमात्म स्वरूप उसी दिव्य शक्ति को सब वस्तुओंमें छिपी उसी २ के नाम रूपसे विख्यात सब पदार्थोंमें प्रविष्ट सब चेष्टा कराने वाली उत्पत्ति आदि का मुख्य कारण स्वरूप अति प्राचीनकालमें भी ध्यान योग के द्वारा शोच विचार कर ज्ञान चक्षुसे देखा और जाना था॥

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशा-
न्तं शतार्द्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।

अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥४॥

अ०—य एकस्तानि निखिलानि कालात्मयुक्तानि कारणान्यधितिष्ठति स चोपनिषत्सु प्रकारद्वयेन प्रतिपाद्यते—जगत्सम्बन्धं विहाय केवलस्वरूपमात्रेण क्वचिद्व्याख्यानप्रकारः क्वचिच्च—"एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च" इति तत्त्वनामरूपावच्छेदेन सोपाधिकस्य व्याख्यानम् । यथा पृथिव्यन्तर्गतान्याकाशवाय्वग्निजलानि स्थूलदर्शनेन भिन्नानि प्रतीयमानान्यपि सूत्रवस्त्रादिवद्वस्तुतोऽभिन्नान्येवाभिमतानि भवन्ति तथैव "सओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु" इति वेदप्रमाणमाश्रित्य वाससि सूत्रवत्परमेश्वरतोभिन्नं जगन्नास्ति । किन्तु सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । इति मत्वा तमिति पदेन सर्वनियन्ता पूर्वतृतीयमन्त्र उक्तः परमात्मा ब्रह्माण्डचक्रस्वरूपेण व्यपदिश्यते । प्रकृतिरव्यक्तमव्याकृतं परमाण्वाख्यं मायाऽभिधं वैकं सर्वस्य जगतः कारण-

मुपादानमेव यथाभावं नेमिस्थानीयमस्या-
विद्यानुबद्धिर्नाशस्य परमात्मनत्वमेकनेमिम् ।
त्रिवृतं त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोभिः प्रकृतिगुणै-
र्वृतमाच्छादितम् । ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियभेदेन
दशेन्द्रियाण्येकादशं मनः पञ्चभूतान्येवं षो-
डश विकारा अन्तोऽवसानं विस्तारसमाप्तिर-
स्यात्मनस्तत्त्वं षोडशान्तं यद्वा प्रश्नोपनिष-
दुक्तषोडशकला अंशा अन्तोऽवसानं पूर्णत्व-
स्य । अथवाऽव्यक्तकार्यं समष्टिरूपं विराट्-
सूत्रात्मद्वयं तद्व्यष्टिरूपाणि भूरादिचतुर्दश-
भुवनानि तानि षोडशान्तोऽवसानं यस्य प्र-
पञ्चात्मनाऽवस्थितस्य परमात्मनस्तं षोडशा-
न्तम् । शतस्यार्द्धं पञ्चाशत्प्रत्ययभेदाविपर्ययाः
शक्तितुष्टिसिद्धिसंज्ञका अराश्च यस्य तं श-
तार्द्धम्-तत्र पञ्चविपर्ययभेदाः शक्तेरष्टाविंश-
तिभेदास्तुष्टेर्नवाष्टौ च सिद्धय इति पञ्चा-
शत् । तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धता-
मिस्र इति पञ्चविधाऽविद्याविपर्ययभेदाः ।
मनोबुद्धिरहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टप्रकृ-
तिष्वात्मबुद्धिस्तमोऽष्टविधम् । अणिमाद्य-
ष्टसिद्धिषु सामर्थ्यप्राप्तिरष्टविधो मोहः । प-

ष्वसु प्रत्यक्षेषु पञ्चस्वानुश्राविकेषु च शब्दादि विषयेषु भोगोत्कण्ठा दशविधो महामोहः। दशसु दृष्टानुश्राविकविषयेष्वष्टविधैरैश्वर्यैः प्रयतमानस्य तेषामसिद्धौ यः क्रोधः सोऽष्टादशविधस्तामिस्रः। अष्टविधैश्वर्येण दृष्टानुश्राविकदशविषयेषु भोगायोपस्थितेष्वभुक्तेषु वा मृत्युना ह्रियमाणस्य यः शोकः- "अहो ! महता श्रमेण क्लेशेन च समुनार्जिता मयेमे भोगाः नचोपभुक्ताः सन्निहितश्चायं मरणकालः पश्यतो मम सर्वमिदं प्रेयः प्रलीयते नात्र किमपि कर्त्तुं शक्तइति शोकसागरएव निमज्जामि,, जायते सोऽन्धतामिस्रइति गद्यते। इत्येवमन्धतामिस्रोऽप्यष्टादशविधएवास्ति तथा सति विपर्ययनाम्नी तमआदिपञ्चविधाऽविद्या द्वाषष्टिभेदा सम्पद्यते। मूकत्वाद्यभावो दशेन्द्रियशक्त्यो नवतुष्टिषु चैकैकस्यां तुष्टौ द्वेद्वे शक्ती इत्यष्टादश इत्येवमष्टाविंशतिशक्तयः। नवविधा तुष्टिर्यथा—कश्चित्प्राकृतजगतस्तत्त्वमसारत्वं दुःखहेतुत्वं च सम्यग्बुद्ध्वा कृतार्थोऽस्मीति तुष्यति तत्त्वं ज्ञातुं शक्तइति च म-

न्यते स च पुनर्विरक्तः सन् विरक्तोऽहं सर्वं त्यक्तुं शक्नोमीति मन्यते तुष्यति च। एवमत्र द्विविधा शक्तिरस्ति । अन्यः कश्चित्तु किं जगतस्तत्त्वज्ञानेन किं वा संन्यासाश्रमोपादानेन मुक्तिस्तु स्वतएव बहुना कालेन भवतीति मत्वा तुष्यति । अपरः कोऽपि मन्यते नहि भाग्यमन्तरेण किमपि प्राप्तुं शक्यं यदि भाग्ये मोक्षोऽस्ति तर्हि भविष्यत्येवेति परितुष्यति । न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यतीति मत्वा विषयसङ्गदोषदर्शनादुपारम्य कश्चित्तुष्यति । इमाश्चतस्रस्तुष्टयो विषयाणामर्जनरक्षणादिषु हिंसादिदोषदर्शनेनास्वीकरणजन्याः पञ्च तुष्टयइति नव तुष्टयो व्याख्याताः । जन्मान्तरसंस्कारप्राबल्यादनायासेन प्रकृत्यादिविषयं यत्तत्त्वज्ञानं जायते सा प्रथमो हनामिका सिद्धिः शब्दानामभ्यासमन्तरेण पूर्वकालीनसंस्कारप्राबल्याद्यच्छब्दश्रवणमात्राज्ज्ञानमुत्पद्यते सा द्वितीया सिद्धिः शब्दविषया। शास्त्राभ्यासाद्द यत्प्रकृष्टं ज्ञानमुत्पद्यते सा तृतीयाऽध्ययनसिद्धिः । आध्यात्मिकादिसुखदुःखसहिष्णुत-

योत्पन्नं ज्ञानं त्रिविधा सिद्धिर्ज्ञानस्य, सुहृत्सङ्गेन या ज्ञानस्य सिद्धिः सा च सुहृत्प्राप्तिर्नाम सप्तमी सिद्धिः । आचार्याय हितवस्तुदाने या विद्यासिद्धिः साऽष्टमी । एवं पञ्चाशद्दशः सभेदाः परिगणिता भवन्ति । दशेन्द्रियाणि तेषां च शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवचनादानविहरणोत्सर्गानन्दा दश विषयास्तान्येव विंशतिः प्रत्यरा अराणां दार्ढ्याय कीलकाइव भवन्ति ताद्भिर्युक्तम् । अष्टसंख्यापरिमाणमस्य सोऽष्टकस्तादृशैः षड्भिरष्टकैर्युक्तम् । पञ्च तत्त्वानि मनो बुद्धिरहङ्कार इति प्रकृत्यष्टकम्, त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धात्वष्टकम् । अणिमाद्यैश्वर्याष्टकम्, धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्या भावाष्टकम् । ब्रह्मप्रजापतिदेवगन्धर्वयक्षराक्षसपितृपिशाचा देवाष्टकम् । क्षान्तिर्दयाऽनसूयाशौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति गुणाष्टकम् । एतैः षड्भिरष्टकैर्युक्तम् । विश्वानि सर्वाणि स्वर्गनरकादीनि रूपाण्यस्य, एकः कामोऽभिलाषरूप एव

पाशो बन्धनमस्य तद् विश्वरूपं चैकपाशं च विश्वरूपैकपाशम् । धर्माधर्मज्ञानमार्गभेदा अस्येति त्रिमार्गभेदं यद्वा—उत्पत्तिस्थितिलयास्त्रयो मार्गभेदा अस्य तत् । द्वे शुभाशुभे पृथक् २ मिश्रिते पुण्यपापे वा तयोः कर्मणोर्निमित्तभूतएको मोहो देहेन्द्रियमनोबुद्धिजात्यादिष्वनात्मस्वात्माभिमानोऽस्येति द्विनिमित्तैकमोहम् । एवं भूतं ब्रह्मणश्चक्रमिव ब्रह्माण्डमधीमः स्मरामइत्युत्तरपद्येनान्वयोऽवगन्तव्यः । यद्वोक्तविधं ब्रह्मचक्रं ध्यानयोगानुगता अपश्यन्निति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०—नात्र चक्रपदमालङ्कारिकं यत्कुम्भकारशकटादीनां चक्राणि सातत्येन भ्रान्तानि दृष्ट्वा तद्वद् ब्रह्माण्डस्य चक्रत्वं कल्पितमिति । अपित्वनादिवेदाशयेन ब्रह्माण्डस्याविरतभ्रान्तस्य यच्चक्रत्वं स्वतः सिद्धं तद्वदेव गतिं लक्षयद्भिर्विपश्चिद्भिर्यैः शकटाङ्गादीनामपि चक्रत्वमुपकल्पितम् । तेन ब्रह्माण्डस्य प्रधानं चक्रत्वमस्ति । कुम्भकारादिचक्राण्यल्पकालं भ्रमन्ति संसारचक्रं च प्रतिकल्पारम्भे स्वाभाविकेक्षणेन परमात्मना सकृदेव

भ्राम्यते तच्च तन्नियमबद्धं प्रलयावधि सातत्येन भ्राम्यति न कदापि मध्ये तस्य विरामः केनापि कर्त्तुं शक्यते। ध्यानयोगेन तत्त्वज्ञा एव तच्चक्रगतिं स्वात्मन्यालोचयन्ति। ये च केऽपि कदाचिच्चक्रगतिमालोचयन्ति ज्ञानचक्षुषा सम्यक् पश्यन्ति त एव तस्मात् प्राप्तविरामाः शाम्यन्ति दुःखान्मुच्यन्ते च यद्यपि तेषां दृष्टौ चक्रभ्रान्तिः समाप्यते तथाप्यन्यसाधारणलौकिकपुरुषापेक्षया तत्तथैवाविरततया भ्राम्यति तस्मादनाद्यनन्तकालीना चक्रगतिरस्ति। यद्यपि चक्रपदमत्र पद्ये नास्ति तथापि नेम्यरादिलिङ्गैस्तदुपादानं स्फुटमेवास्ति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—जो एक ईश्वर काल तथा आत्मा जीवादि उन सम्पूर्ण सृष्टि के कारणों का अधिष्ठाता है। उपनिषद् ग्रन्थों में उसका दो प्रकार से व्याख्यान किया है। कहीं तो संसार के साथ व्यापक उत्पादक पालकादि सम्बन्ध को छोड़ के केवल स्वरूप मात्र से उसका वर्णन है और कहीं "वह ईश्वर सब पदार्थों में उन्हीं २ के रूप से व्याप्त हो रहा है" उस २ नाम रूप से सोपाधिक ईश्वर का व्याख्यान है। जैसे पृथिवी के भीतर विद्यमान आकाश-वायु अग्नि जलादि स्थूल दृष्टि से भिन्न प्रतीत होने पर भी वस्तुतः सूत तथा वस्त्र

वा सुवर्ण और कुण्डलादि के तुल्य एक ही माने गये हैं। वैसे विभु भगवान् प्रजा में ओत प्रोत है ऐसा वेद प्रमाण होने से वस्त्र में सूत के तुल्य जगत् में ईश्वर है, ईश्वर से भिन्न जगत् नहीं है। किन्तु यह सब जगत् ईश्वर ही है सत् चित् आनन्द स्वरूप से ईश्वर विद्यमान है। ऐसा मानकर तम् पद से तृतीय मन्त्रोक्त सर्व नियन्ता परमेश्वर का ब्रह्माण्ड चक्र रूप से व्याख्यान किया है (तमेकनेमिम्) सबके अधिष्ठाता अद्वितीय स्वामी उस ईश्वर से अधिष्ठित प्रकृति प्रधान अव्याकृत अव्यक्त परमाणु वा माया आदि जिस के नाम हैं ऐसा एक सूक्ष्म कारण ही जिसकी नेमि नाम नाह है (त्रिवृतम्) सत्व रजस् तमस् तीनों प्रकृतिके गुणों से युक्त वा आच्छादित (षोडशान्तम्) पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय ग्यारहवां मन और पृथिव्यादि पांच भूत इन सोलह विकाररूप पदार्थोंमें जिसके अन्त नाम विस्तार की समाप्ति संपूर्णता होती अथवा प्रश्नोपनिषद् में कही सोलह कलाओं में जिस का अन्त है अथवा अव्यक्त का कार्य विराट् और द्वितीय सूत्रात्मा ये दो समष्टि रूप तथा व्यष्टि रूप चतुर्दश भुवन इन सोलह में है अन्तनाम समाप्ति जिस प्रपञ्च रूप से अवस्थित परमेश्वर की वह षोडशान्त कहा गया (शतार्द्धारम्) सौ के आधे पचास अरा के तुल्य जिसमें लगे हैं। पांच विपर्यय नाम मिथ्याज्ञान वा अविद्या के भेद, अट्ठाईस प्रकार की शक्ति, नौ प्रकार की तुष्टि और आठ प्रकार की सिद्धिया ये ब्रह्माण्डरूप पहिये के पचास अरा हैं। उन में तमस मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र ये पांच अविद्या नामक विपर्ययके भेद है जिन में से मन, बुद्धि अहङ्कार पाचतन्मात्र इन आठ प्रकृतियोंमें आत्मबुद्धि होना अर्थात् इन को समझना कि ये ही मै आत्मा हूं यह आठ

प्रकार का तम अणिमा—छोटा हो जाना, महिमा—बड़ा हो जाना, गरिमा—भारी हो जाना, लघिमा—हलका हो जाना, प्राप्ति जिस को चाहे पकड़ वा छू सके, प्राकाम्य—इच्छा का विघात न होना, ईशित्व सब को अपने आधीन कर दबा लेना और वशित्व जिस को चाहे वशीभूत कर सकना इन आठ सिद्धियों में सामर्थ्य को प्राप्त होना यह आठ प्रकारका मोह, इस जन्म में मिलने योग्य प्रत्यक्ष और जन्मान्तर में प्राप्त होने योग्य स्वर्गादि सम्बन्धी आनुश्रविक इन शब्दादि पांच २ कर दश विषयों में भोगने की उत्कट इच्छा का होना दश प्रकार का महामोह, दृष्टादृष्ट पांच २ शब्दादि दो प्रकार के दश विषयों में आठ प्रकार की सिद्धियों के साथ भोगने का प्रयत्न करते हुए पुरुषके विषय भोगोंकी सिद्धि न होने पर अर्थात् विघ्नादि के कारण उस को विषयभोग प्राप्त न होने पर जो क्रोध होता है वह अठारह प्रकार का तामिस्रनामक मिथ्याज्ञान तथा वैसे ही आठ सिद्धियोंके द्वारा भोगने के लिये उपस्थित हुए प्रत्यक्ष परोक्ष दश विषयों का आधा भोग होने वा कुछ भी न भोग पाने पर ही मृत्यु ने आके जिसकी चोटी पकड़ ली उस पुरुष को जो शोक होता "कि हा !!! मैंने बड़े परिश्रम और बड़े कष्ट से ये भोगके सामान संचित किये थे, अब यह मेरे मरने का समय आगया इन से कुछ भी सुख मैंने न भोग पाया मेरे देखते ही मेरा यह प्रिय भोग साधन सब नष्ट हुआ जाता है। हाय अब क्या करूं अब कुछ नहीं कर सकता इस से शोक समुद्र में ही डूबता हूं यह अठारह प्रकार का अन्धतामिस्र दुःख वा अविद्या है। इस प्रकार मिथ्याज्ञान वा विपर्यय रूप अविद्या के ६२ बासठ भेद होते अर्थात् ६२ प्रकार का मिथ्याज्ञान

हो जाता है। गूंगा आदि न होना दश इन्द्रियों की दश विध शक्ति और नव तुष्टियों के साथ १८ अठारह, एक २ तुष्टि के साथ दो २ प्रकार की शक्ति जैसे कोई धन के विना संतुष्ट है तो धन के अभाव में दुःख न व्यापने की शक्ति और धन के मिलने पर त्याग वा उपेक्षा कर देने की शक्ति इस प्रकार एक २ तुष्टि से दो २ शक्ति सम्बन्ध रखती हैं। इस प्रकार अट्ठाईस शक्ति कहाती वा मानी जाती हैं। नव प्रकार की तुष्टि वा सन्तोष यह है कि कोई मनुष्य संसार के तत्त्व नाम असारता और दुःख हेतु होने को सम्यक् जान कर मैं कृतार्थ हूं ऐसा विचारकर संतुष्ट होता मैं तत्त्वज्ञानता हूं ऐसा मानता वही फिर विरक्त हुआ मैं विरक्त हूं सब त्याग सकता हूं ऐसा मानता और तुष्ट होता है ऐसे यहां दो प्रकार की शक्ति है। अन्य कोई कहता है कि जगत् के तत्त्वज्ञान से वा संन्यासाश्रम के ग्रहण से क्या प्रयोजन है? मुक्ति तो बहुत काल बीतने पर स्वयमेव ही हो जाती है ऐसा मान कर सन्तुष्ट हो जाता है। तथा अन्य कोई मानता है कि भाग्य के विना कुछ नहीं होता यदि हमारे भाग्यमें मोक्ष है तो हो ही जायगा। ऐसा विचार स्थिर करके संतुष्ट हो जाता। तथा कोई पुरुष "विषय भोगों से कामना की तृप्ति होती नहीं" ऐसा मानकर विषयों के संग में दोष देखके भोगों से हटकर सन्तुष्ट होता है यह चार प्रकार की तुष्टि तथा पांच विषयों के भोगों का संचय और रक्षादि करने में हिंसादि दोष देख के उनका स्वीकार न करने से पांच प्रकार की तुष्टि उत्पन्न होती ऐसे ये नव तुष्टि हो जाती हैं। जन्मान्तर के संस्कारों की प्रबलता से सहज ही में जो प्रकृत्यादि विषयों का तत्त्वज्ञान हो जाता यह जन्म सिद्धि नामक प्रथम ऊह सिद्धि है।

शब्दों का अभ्यास किये विना ही पूर्व संस्कारों की प्रबलता से जो शब्द के सुनने मात्र से अर्थज्ञान हो जाता है यह द्वितीय सिद्धि है इसी को सर्वभूतों का शब्दज्ञान भी कहते हैं। वेदादिशास्त्रों के अभ्यास द्वारा जो प्रबलज्ञान वा प्रबलशक्ति पूर्व संस्कारों की प्रबलता सहित प्रकट होती यह तीसरी अध्ययन सिद्धि, आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक इन तीन प्रकार के सुख दुःखादि द्वन्द्वों के निर्विकल्प सहनद्वारा हुई शान्ति वा सन्तोष तीन प्रकार की ज्ञानसिद्धि मित्र वा शुद्ध हृदय पुरुषों के समागम से हुई ज्ञान की सिद्धि सुहृत्प्राप्तिनामक सातवीं तथा गुरु के लिये हितकारी दुर्लभ पदार्थ को भी विद्याबल से लाकर देना यह आठवीं विद्या सिद्धि है। इस प्रकार ब्रह्मचक्र के पचास अरा गिनाये गये हैं। (विंशतिप्रत्यराभिः) दश इन्द्रियां और शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध ये श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के यथासंख्य पांच विषय तथा हाथ का पकड़ना, पग का चलना, गुदा का त्याग, उपस्थ का आनन्द और वाणी का बोलना ये कर्मेन्द्रियों के पांच विषय सब मिलके बीस प्रत्यरा नाम पचास अराओं को पुष्ट रखने के लिये पच्चर कहाते हैं। इन से युक्त, (अष्टकैःषड्भिः) आठ २ संख्या वाले छः अष्टकों से युक्त इन में पांच सूक्ष्म तत्त्व मन बुद्धि और अहंकार यह प्रकृत्यष्टक त्वक् चर्म, मांस, रुधिर, मेद, अस्थि, मज्जा, और और वीर्य यह धातुओं का द्वितीय अष्टक, अणिमा, महिमा गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व यह आठ प्रकारका तृतीयाष्टक धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य यह चौथा भावाष्टक ब्रह्मा, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, और पिशाच यह पांचवां देवाष्टक, क्षमा, दया, अनुसूया, शौच अनायास मंगल

उदारता, सन्तोष यह षष्ठगुणाष्टक, इन छः अष्टकों से युक्त (विश्वरूपैकपाशम्) स्वर्ग नरक, पशु, पक्षी, कीट पतंग स्थावरादि नाना रूप वाला एक कामना सुख भोग की अभिलाषा वा तृष्णा ही जिस की फांसी वा बन्धन है (त्रिमार्गभेदम्) धर्म अधर्म और ज्ञानये तीन मार्ग भेद जिस के हैं अथवा उत्पत्ति स्थिति प्रलय रूप जिस के तीन मार्गभेद है (द्विनिमित्तैकमोहम्) शुभाशुभ नाम पाप पुण्य रूप दो प्रकार के जो कर्म उन का निमित्त शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और ब्राह्मणादि जाति इन अनात्म पदार्थों में आत्माभिमान कि ये ही हम हैं ऐसा एक मोह है जिसका उसे द्विनिमित्तैक मोह कहते हैं। ऐसे पहिया के तुल्य ईश्वर का यह संसारचक्र वा ब्रह्मचक्र है इस को ब्रह्मज्ञानी लोग ऐसा ही चिन्तन करते हैं।

भा०—यहां चक्र पद का अर्थ अलङ्कार से लेना आवश्यक नहीं है कि कुम्हार के चाक वा गाड़ी के पहिये की तुल्यता को लेकर संसार को चक्र कहा वा माना हो सो ठीक नहीं किन्तु सनातन वेद के आशय और अनुमानादि द्वारा निरन्तर सदा भ्रमण करने परिवर्तन होने वाले संसार का जो चक्रपन स्वतः सिद्ध स्वाभाविक है उसी के तुल्य दशा मानकर गाड़ी के पहिये आदि को भी विद्वानोंने 'चक्र माना वा कहा है। इस से ब्रह्माण्ड ही मुख्य चक्र है। कुम्हारादि के चक्र बहुत थोड़े काल तक घूमते परन्तु परमेश्वर के स्वाभाविक ईक्षण से प्रतिकल्प के आरम्भ में संसारचक्र एक वार घुमा दिया जाता है। वह ईश्वर के प्रबल नियम से प्रलय पर्यन्त निरन्तर घूमता रहता है जिसके एक वार घुमानेमें अनेक असंख्य जन्म मरणादि होते रहते हैं। प्रलयके पूर्व बीचमें संसारके जन्म मरणादि सम्बन्धी परिवर्त्तन, प्रवाहको कोई जन

रोक नहीं सकता। ध्यानावस्थ सूक्ष्म एकाग्र बुद्धिमें तत्त्वज्ञानी लोग ही संसारचक्रके प्रवाहको अपने आत्मामें साक्षात् देख पाते वा परख सकते हैं। और जो कोई शुभ संस्कारी पुण्यात्मा कभी इस जगत्के परिवर्त्तन प्रवाहको ज्ञानदृष्टिसे सम्यक् देखते वा देख पाते हैं वेही संसारसागर की भयंकर तरंगों से बचने का उपाय करते हुये शान्त होते और दुःखों से छूटते हैं। यद्यपि उन तत्त्वज्ञ लोगोंकी दृष्टि में संसार चक्र का घूमना समाप्त होजाता है तथापि अन्य साधारण लौकिक पुरुषोंकी अपेक्षामें संसारचक्र का प्रवाह वैसा ही निरन्तर बहा चला जाता है इससे सिद्ध हुआ कि बीच २ प्रलयकाल में प्रवाह के रुकजाने परभी बार२ अनादि अनन्त असंख्य सृष्टि प्रलयोंका बार २ निरन्तर होते जाना भी एक चक्र प्रवाह है। इस से अनादि अनन्त संसारचक्रकी गति निर्विकल्प सिद्ध है। यद्यपि चक्रपद इस श्लोक में नहीं है तथापि नेमि और अरा आदि चिन्हों से तथा छठे मन्त्र में ब्रह्मचक्र पद के स्पष्ट आने से चक्र का व्याख्यान स्फुट है ॥ ४ ॥

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्। पञ्चावर्त्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥५॥

अ०—संप्रति नदीरूपेण संसारात्मकब्रह्म प्रवाहं दर्शयति। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि स्रोतांसि बुद्धिप्रवाहनिस्सरणस्थानानि यस्या अ-

स्थानानीव तांपञ्चस्रोतोऽम्बुं नदीमधीम इति सर्वत्र सम्बन्धो बोध्यः । पञ्चभूतानि पृथिव्यादीनि योनयः कारणानि प्रवृत्तिहेतूनि तैरुग्रा वक्रा च तां पञ्च प्राणा ऊर्मयो यस्यां तां, पञ्चबुद्धीनां चक्षुरादिज्ञानेन्द्रियजन्यज्ञानानामादिमूलं कारणं मनो यस्यां तां, पञ्च विषया आवर्त्तस्थानीया निमज्जनहेतवो यस्यां तां, गर्भवासजन्मजराव्याधिमरणजन्यपञ्चमहादुःखौघानां वेगो यस्यां तां, षडङ्गानि चतुश्चत्वारिंशच्च प्रत्यङ्गान्येवं पञ्चाशद्भेदा विभागा यस्यास्तां [तत्र चतस्रःशाखामध्यं शिर इति षडङ्गानि । विंशतिरङ्गुलयः स्रोतांसि मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकवस्तिग्रीवाकर्णनेत्रभ्रूशङ्खांसतण्डककक्षस्तनवृषणपार्श्वस्फिग्जानुबाहूरूणीति प्रत्यङ्गानि] अविद्यादयः पञ्चक्लेशाएव पर्वाणि बन्धनानि यस्यास्ताम् । एवं नदीरूपेणावस्थितस्यनिखिलस्य जगतो दृष्टान्तोदाहरणरूपं शरीरमिदमधीमः स्मरामइति ते ब्रह्मवादिनो ध्यानयोगानुगता अपश्यन्निति पूर्वेणान्वयः ।

भा०—यथा निरन्तरमहोरात्रं नदीवहत्येवं प्राणिदेहप्रधानः संसारोऽपि संसरत्येवानिशं नैरन्तर्येण तस्मादेव तस्य संसारत्वमन्वर्थं संघटते । अस्यां च संसारनद्यामनादिकालान्निमज्जन्नपि जीवो न बुध्यते न जागर्त्ति । कश्चिदेव कृतसाधनः सुकृत्स्वदशां यदा चिन्तयति तदो सएतस्माद् दुःखप्रधाननदीप्रवाहान्निस्सर्तुमपि प्रयतत एव ॥५॥

भावार्थः—अब इस पांचवें मन्त्रमें नदीरूपसे संसारात्मक ब्रह्मप्रवाह को दिखाते हैं—(पञ्चस्रोतोऽम्बुम्) पांच ज्ञानेन्द्रियों के छिद्र बुद्धिरूप अम्बु नाम जल निकलने के सोता जिसमें विद्यमान हैं (पञ्चयोन्युग्रवक्राम्) पांच पृथिव्यादि भूत ही इस नदीके योनि नाम उत्पत्तिस्थान हैं जैसे हिमालय पर्वत गङ्गा नदीके निकलनेका योनि नाम कारण है वैसे हम मनुष्यादि प्राणियों के शरीर पृथिव्यादि भूतोंसे निकलते वा बनते हैं । और कारण की उग्रता तीक्ष्णता से जैसे गङ्गादि नदियों में अनेक प्रकार की टेढाई होती वैसे यहां भी पृथिव्यादि कारण से ही शरीरोंमें नाना प्रकारकी कुटिलता आती है इस से हमारी देहरूप यह नदी कुटिल है (पञ्चप्राणोर्मिम्) इस शरीरनदी में पांच प्राण ही पांच प्रकार की तरंगें हैं (पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्) ज्ञानेन्द्रियों से होने वाली पांच प्रकार की बुद्धियों का आदि मूल जिस में मन है ऐसी (पञ्चावर्त्ताम्) पांच शब्दादि विषय जिस शरीर नदी में आवर्त्त नाम भंवर अर्थात् जीवात्मा को डुबाने

वाले चक्कर हैं (पञ्चदुःखौघवेगाम्) गर्भवास, जन्मसमय, बुढ़ापन अतिशिथिलावस्था, व्याधि–रोग और मरण इन पाच, दु:खों के कारण पापों का प्रवाह वेग से जिस में निरन्तर वहा करता है और (पञ्चाशद्भेदाम्) जिस शरीर नदी के अङ्ग उपाग रूप मुख्य कर पचास भेद हैं [दो हाथ, दो गोड़े, ये चार शाखा एक शिर एक मदिरा ये छः मुख्य अंग हैं वेद के छः अंगों से ही मनुष्य के छः अंग बने हैं क्योंकि वेद ईश्वरीय विद्या ही सब का कारण है इन छः अंगों में ४४ प्रत्यङ्ग हैं जैसे—हाथ और पगों की बीस अङ्गुलियां २१ स्रोतारूप नसें नाड़ी २२–मस्तक नाम मूर्द्धा २३–उदर २४ पीठ २५–नाभि २६–ललाट नाम माथा २७–नासिका, २८–चिबुक नाम ठोढ़ी २९–वस्ति नाम पेंड़ू ३०–कण्ठ ३१–कान ३२ नेत्र ३३–भौंहे ३४–शङ्ख ३५–कन्धा ३६–तण्ड नाम टंकना ३७–कांखे ३८–स्तन नाम थन ३९-अण्डकोष वा उपस्थ ४०–पसुलिया ४१–स्फिच् नाम कटिभाग ४२–जानुनाम घोंटू ४३–बाहे ४४—दो जघा ये चवालीस उपाङ्ग तथा पूर्वोक्त छः अङ्ग सब पचास भेद हुए और (पञ्चपर्वाम्) और पाच अविद्यादि क्लेश जिसमें पाच गाठे हैं ऐसे नदीरूप से विद्यमान सब ब्रह्माण्ड की रचना के उदाहरण नमूना रूप इस शरीर को (अधीम.) हम ब्रह्मवादी लोग स्मरण करते हैं ऐसा उन योगी और ज्ञानी लोगो ने देखा जाना है ॥

भा०—जैसे दिन रात निरन्तर नदी बहती है ऐसे ही प्राणियो के शरीर ही जिस में मुख्य हैं ऐसा यह सब संसार भी निरन्तर चलायमान रहता है इसी से उस का नाम संसार कहना सार्थक है । इस संसार नदी में जीव अनादि काल से डूबता उछलता गोते खाता हुआ भी नहीं जागता सचेत नहीं होता किन्तु कोई उत्तम साधनों वाला पुण्या·

ऐसा पुरुष अपनी भीतरी दशा को जब शोचता है तब वह इस दुःख प्रधान नदीके प्रवाह से निकलने के लिये भी अवश्य प्रयत्न करता है ॥

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥ ६॥

अ०—अस्मिन्कार्यकारणात्मकब्रह्मचक्रे केन संसरति केन वा मुच्यतइति संसारमोक्ष हेतुद्वयप्रदर्शनार्थमाह सर्वप्राणिनामाजीवनमीषज्जीवनमस्मिंस्तस्मिन्सर्वाजीवे सर्वेषां प्राणिनां संस्थासमाप्तिः प्रलयो मरणं वाऽस्मिंस्तादृशे तस्मिन् पूर्वोक्ते ब्रह्मणः परमात्मनः स्वामिनो बृहन्ते महति चक्रे भ्रमणशीले संसारेऽविद्यादिक्लेशैर्हंसो हन्ति गच्छति ज्ञानं गमनं प्राप्तिं च करोति हन्ति प्रतिकूलमिति वा हंसः । स्वरूपेण शुद्धो निर्मलः सदसद्विवेचनशीलोऽपि जीवो भ्राम्यतेअनात्मभूतदेहादिकमात्मानं मन्यमानो देवमनुष्यतिर्यगादि भेदभिन्ननानायोनिषु शुभाशुभकर्मभिश्चाल्यते।

केनहेतुनानानायोनिषु भ्रमतीत्याह । स्वमात्मानं जीवं प्रेरितारमीश्वरं च भेदेनात्मद्वयं पृथक्पृथग् ज्ञात्वाऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति जीवेश्वरभेददर्शनेन संसारचक्रे परिवर्तते । केनमुच्यतइत्याह तेनेश्वरेणजुष्टोदीर्घकालावधि निरन्तरंसेवितस्सच्चिदानन्दब्रह्मस्वरूपोऽहमस्मीति समाधाय जीवोऽमृतत्वं मरणादिदुःखाभावमेति. प्राप्नोति ।

भा०—यथा नहि कोऽपि जलाशयं विहाय शुष्कस्थलाज्जलमाप्तुमर्हति तथैव सर्वदा शुद्धमुक्तेश्वरं विहाय दूरं स्वतोभिन्नं वा मत्वा न कोऽपि मोक्षाधिकारी भवितुमर्हति । यथा चाग्निरेव शीतस्यौषधं न कोऽप्यग्निमन्तरेण शीतस्यौषधं कदापि कर्तुमर्हति । एवमीश्वराश्रयएव जीवात्मनः शुद्धेर्मुक्तेश्च कारणं नान्यदित्येतदेव " तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय० ,, इत्यादिना वेदमन्त्रेणाप्युक्तं बोध्यम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ.—इस कार्य कारण रूप ब्रह्मचक्र पर किस हेतु से भ्रमता या किससे मुक्त होता है सो दिखाते हैं (सर्वा-

जीवे) सब प्राणियोंका जिसमें थोड़ा जीवन है (सर्वसंस्थे) सब प्राणियों का प्रलय नाम मरण जिसमें हो जाता (तस्मिन् बृहन्ते ब्रह्मचक्रे हंसो भ्राम्यते) उस पूर्वोक्त बृहत् नाम बड़े सर्वव्यापी ब्रह्म परमात्मा के भ्रमणशील इस संसार रूप चक्र में हंस नाम ज्ञान, गमन और प्राप्ति करने वाला वा प्रतिकूल का हनन विनाश करने वाला स्वरूप से शुद्ध निर्मल सत्यासत्य का विवेचन शील भी जीवात्मा अविद्यादि क्लेशों से भ्रमाया जाता है अर्थात् जड़ माया स्वरूप अनात्मा शरीरादि को आत्मा मानता हुआ कि यही मैं हूं देव मनुष्य तथा तिर्यगादि अनेक योनियोंमें शुभाशुभ कर्मों द्वारा भ्रमता है। अनेक योनियों में क्यों भ्रमता है सो कहते हैं (प्रेरितारमात्मानं च पृथक् मत्वा) अपने जीव स्वरूप और प्रेरक अन्तर्यामी ईश्वर को भेद के साथ अर्थात् दोनों आत्माओं को पृथक् २ जान कर अर्थात् वह ईश्वर मुझ से भिन्न है और मैं जीव सदा ही उससे भिन्न हूं इस प्रकार द्वैत भेद ज्ञानसे संसार चक्र में भ्रमता है। फिर कैसे मुक्त होता है सो कहते हैं (जुष्टः) उस ईश्वर के साथ सेवित कि सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप ही मै हूं ऐसा समाधान करके (ततस्तेनामृतत्वमेति) तदनन्तर उस दीर्घ काल तक निरन्तर किये सेवन वा अहंग्रह उपासना से मरणादि सम्बन्धी महादुःख से छूट कर मुक्त हो जाता है ॥

भा०—जैसे कोई प्यासा मनुष्य जलाशय को छोड़ सूखी पृथिवीसे जलको प्राप्त नहीं कर सकता वैसे ही सर्वदा सर्वथा शुद्ध निर्दोष नित्य मुक्त ईश्वरको छोड़ वा अपनेसे पृथक् दूर मानकर कोई भी मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता। और जैसे वेद के सिद्धान्तानुसार अग्नि ही शीत का औषध है इसी से किसी देश वा काल में कोई भी पुरुष अग्नि के

विना शीत की निवृत्ति कदापि नहीं कर सकता इसी प्रकार ईश्वर का आश्रय वा शरण लेना ही जीवात्मा की शुद्धि वा निर्दोष होने और मुक्ति का कारण है अन्य नहीं यही वेद का अटल अटूट सिद्धान्त " उसी ईश्वर को जान मान वा प्राप्त होकर मनुष्य मरणादि सम्बन्धी महान् दुःखसागर से छूट सकता है किन्तु इस मोक्षके लिये अन्य कोई मार्ग वा उपाय नही है „ इत्यादि वेदमन्त्रसे कहा गया है ॥ ६ ॥

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥७॥

अ०—एतत्प्रेरितृ ब्रह्मान्यस्मात्प्रपञ्चात् परमं निरतिशयं पद्मपत्रमिवाम्भसा प्रपञ्चेनासंस्पृष्टं तूद्गीतमुत्कर्षेण वेदादिशास्त्रे गीतमुपदिष्टं "पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः„ "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते„ इत्यादिना, मायाप्रकृत्याद्यभिधजड़कारणस्य स्वातन्त्र्यसिद्धौ द्वैतापत्तिदोषआयाति तन्निराकरणायाह—तस्मिन् ब्रह्मणि जीवेश्वरप्रकृतिभेदेन भोक्तृभोग्यप्रेरितृभेदेन वा त्रयोऽवयवा भवन्ति तत्राक्षरं चाविनश्वरं

सर्वदैकरसं ब्रह्म प्रकृतिपुरुषरूपभोग्यभोक्त्रोः सर्वदा जगतः कारणावस्थायामपि सुप्रतिष्ठाऽऽधारः कथ्यते । अर्थात्प्रकृतिपुरुषौ साक्षिस्वरूपे ब्रह्मणि जलेजलतरङ्गवदन्यत्वापादकं नास्ति तस्माददैतमेव अत्रानयोः प्रपञ्चब्रह्मणोस्त्रिषु भोक्त्रादिषु वा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्ञानसाधनेषु प्रवृत्ता अन्तरं भेदं विदित्वा सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यं शुद्धं ध्रुवं कूटस्थं ब्रह्मानित्योऽशुद्धोऽध्रुवश्चलोऽसत्प्रपञ्चस्तस्य रज्जौ सर्पवद्वस्तुतोऽभाव एवास्तीति ज्ञात्वा समाधिपरा ब्रह्मणि लीनाः स्वरूपशून्याइव भूत्वा योनिमुक्ता जन्मजरामरणादिसंसारभयाद्विमुक्ता भवन्ति ॥

भा०—यद्यपि भोग्यभोक्तृरूपेण प्रकृतिपुरुषयोरत्र पृथक्त्वं दर्शितं तथापि यथा पृथिव्या विकाराणां कालत्रयेऽपि पृथिव्येवाऽऽधारः प्रतिष्ठाऽस्ति अतएवोक्तं वाचारम्भणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यमिति पृथिवीविकाराः पृथिवीरूपाएव सन्ति तथैव नामरूपमात्रं प्रकृतिपुरुषात्मकं जगद्व वस्तुतो ब्र-

ह्मणोऽभिन्नमेव एवं ब्रह्मणि प्रपञ्चे च सदसद्रूपमन्तरं ज्ञात्वा ज्ञानिनां मोक्षो जायते ॥७॥

भावार्थ—(एतत्परमन्तु ब्रह्मोद्गीतम्) यह पूर्वोक्त अन्तर्यामी प्रेरक ब्रह्म, अन्य प्रपञ्च मायादि से निरतिशय महान् शुद्ध नित्य है, जैसे कमल के पत्ते में जल नहीं लगता वैसे संसार के दोषों का स्पर्श उसके साथ नहीं होता इसीसे वेदादि शास्त्रमें उसका उत्कर्ष सर्वोपरि कहा गया है "पुरुष परमेश्वर से परे कुछ नहीं है वही सबकी काष्ठा [हद्द] सीमा तथा वही सबकी परागति है,, चाहे यों कहो कि सब भावों की अन्तिम सीमाका नाम ही ईश्वर है माया वा प्रकृत्यादि जड़ को स्वतन्त्र मानने पर द्वैतापत्ति दोष आता है उस की निवृत्ति के लिये कहते हैं कि—[तस्मिंस्त्रयम्] उस एक ब्रह्म में जीव ईश्वर और प्रकृति ये तीन वा भोक्ता भोग्य और प्रेरक ये तीन भेद व्यावहारिक हैं। [सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च] उन तीनों में अक्षर नाम अविनाशी सर्वदा एक रस रहने वाला ब्रह्म, प्रकृति पुरुषरूप भोग्य भोक्ता जीव और जड़ संसार का सर्वदा कारण दशा में भी अच्छा आधार अच्छे प्रकार अपने अन्तर्गत सम्हाल के रखने वाला होता वा कहाता है अर्थात् साक्षीरूप प्रेरक एक परमेश्वर से प्रकृति और जीव जलमें जलतरंग के तुल्य द्वैतके साधक नहीं होते, जैसे तरङ्ग भी जल का रूपान्तर है वैसे ही प्रकृति पुरुष भी ब्रह्म से भिन्न नहीं इससे अद्वैत होना सिद्ध है (ब्रह्मविदोऽन्तरं विदित्वा) ब्रह्मज्ञान के साधनों में लगे ब्रह्मज्ञानी लोग इन दो वा तीनों जीव ईश्वर प्रकृति में परस्पर अन्तर—भेद जानकर कि नित्य शुद्ध अचल, एकरस, कूटस्थ ब्रह्म है और संसार अनित्य अशुद्ध चल परिवर्त्ती है रज्जुमें सर्प जैसे वास्तव में नहीं किन्तु अज्ञान से सर्प जान भय होता वैसे ब्रह्म

में जगत् भी वस्तुतः नहीं है ऐसा जानके (ब्रह्मणि लीना-स्तत्परा योनि मुक्ताः) समाधि द्वारा ब्रह्मके ध्यान में लीन और तत्पर हुए जन्म जरा मरणादि संसारके भयसे मुक्त हो जाते हैं ॥

भा०—यद्यपि भोग्य भोक्ता रूप से प्रकृति पुरुषका ब्रह्म से पृथक् भाव यहां दिखाया है, तथापि जैसे पृथिवी के विकारों का तीन कालमें भी पृथिवी ही आधारवा प्रतिष्ठा है। इसी लिये कहा गया है कि " विकार वस्तु वाणीसे कथन-मात्र है किन्तु मृत्तिका ही सत्य है। इस से पृथिवीके वि-कारोंका पृथिवी रूप होना सिद्ध है। वैसे ही प्रकृति पुरुष रूप जगत् ब्रह्मसे भिन्न वस्त्वन्तर वास्तव में नहीं है । इस प्रकार परमेश्वर और जगत्में सत् असत् नित्य अनित्य आदि महान् भेद को जान कर ज्ञानी महात्माओं का मोक्ष होता है ॥ ७ ॥

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्य-क्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः । अ-नीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद् ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥८॥

अ०—वस्तुतो ब्रह्मणएकत्वेऽद्वितीयत्वेऽपि व्यवहारदशायां जीवेश्वरप्रकृतीनामौपाधिक-भेदं दर्शयित्वा तत्त्वज्ञानान्मोक्षो जीवस्य दर्शयति द्वाभ्याम् । अक्षरमविनश्वरमव्यक्तं निरतिशयसूक्ष्मं प्रकृत्याख्यं जगतः कारणं,

क्षरं विनश्वरं पृथिव्यादिस्थूलं जगद्द्वयमेतत्संयुक्तमितरेतरं संसृष्टं विश्वं सर्वमीशईश्वरो निरतिशयशक्तिः परमेश्वरो भरते धरति पुष्णाति च । तृतीयोऽनीशोऽज्ञानबन्धनहेतोः सर्वस्वामित्वाद्रहितो जीवात्मा भोक्तृभावाद् भोगोत्कण्ठाकारणाद्बध्यतेऽविद्यातत्कार्यं देहेन्द्रियादिभिः सम्बध्यते । पुनः स—कदापि सुकृतप्राबल्यावसरे देवं द्योतनशीलं परमात्मानं तत्त्वतो ज्ञात्वा सर्वपाशैर्बन्धनैर्मुच्यते ॥

भा०—जगतः स्थूलदशायामेवानन्तभारस्य ब्रह्माण्डस्य धारकेण भाव्यं प्रलयकाले सूक्ष्मदशायां च भाराभावाद् धारकापेक्षैव नास्ति । कार्यदशायां कारणं तत्रैव व्याप्तं तिष्ठति । लोकेऽपि यः प्रभुरीश्वरः सोऽन्यान् बिभर्त्ति यश्चानीशोऽप्रभुः स मत्स्यादिवद्भोगलोभेन बध्यते यदा च सोप्रभुरपि प्रभुत्वं जानाति तदा सोऽपि दैन्यं जहाति दुःखादपि मुच्यतएवमिहापि स्वस्य वास्तवं स्वरूपं ज्ञात्वा सर्व बन्धनैर्मोक्षः सम्भवति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—वस्तुतः परमेश्वरके एक अद्वितीय होने पर भी व्यवहार दशामें जीव ईश्वर और प्रकृतिका औपाधिक भेद

दिखाके तत्त्वज्ञानसे जीवका मोक्ष होना दो मन्त्रोंसे दिखाते हैं। (क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं संयुक्तमेतद्विश्वमीशो भरते) क्षर नाम विनष्ट होने वाला व्यक्त पृथिव्यादि स्थूल कार्य जगत् और अक्षर नाम अविनाशी अव्यक्त अति सूक्ष्म जगत् का कारण प्रकृति वा मायाप्रकृति ये दोनों कार्य कारण सदा संयुक्त रहते कारणमें कार्य तथा कार्यमें कारण सदा ही ओत-प्रोत रहता यही सब संसार वा ब्रह्माण्ड भर है इस को असीम शक्ति रखने वाला सर्वस्वामी परमेश्वर सदा धारण वा पोषण करता है क्योंकि वही इनका मूल कारण है। (भोक्तृभावादनीशश्चात्मा बध्यते) तीसरा अज्ञान बन्धनसे असमर्थ सब जगत्के साथ स्वामीपन न रखने वाला जीवात्मा अविद्यादि क्लेशों और उनके कार्य शरीर इन्द्रियादि के बन्धनमें विषयभोग के लालच से बंधता पीड़ित होता कष्ट भोगता है। और उनमेंसे कभी कोई जीव (देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्मुच्यते) द्योतनशील सर्व प्रकाशक चेतनों के चेतन ईश्वरको वास्तविक स्वरूपसे जान कर सब बन्धनों से छूट जाता है ॥

भा०—संसार की स्थूल दशा मे ही ब्रह्माण्डका अत्यन्त बोझा होनेसे धारण करने वालेकी विशेष आवश्यकता है। और प्रलय हो जाने पर संसारकी सूक्ष्म दशामें विशेष बोझा न होनेसे धारण कर्त्ता की वैसी अपेक्षा नहीं है। जगत् की कार्यदशामें कार्यमें कारण व्याप्त हो कर रहता और प्रलयके समय कारण में कार्य सूक्ष्म होकर रहता है। लोकमें भी जो समर्थ धनाद्यैश्वर्य वाला होता वही अन्य असमर्थों का पालन पोषण करता है और जो असमर्थ होता वह मछली आदि के समान भोगके लोभ से बन्धन में फंस जाता है। जब वह असमर्थ भी प्रभुताके मर्मको जानता है तब दीनता को छोड़ता और दुःखोंसे भी छूटता ही है इसी प्रकार यहां भी

ईश्वरके और अपने वास्तविक स्वरूपको जानके ज्ञानी मुक्त होता है ॥ ८ ॥

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा-ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता । अन-न्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९ ॥

अ०—जीवापेक्षया ज्ञो ज्ञानस्वरूपईश्वरस्तदपेक्षया च जीवः शरीराद्यभिमानेनाज्ञो द्वाविमावीशानीशौ स्वाम्यस्वामिनावजावजायमानौ नित्यावनादी ईश्वरांशजीवस्य जन्ममरणादि प्रवाहः कदारभ्य प्रवृत्त इति वक्तुं ज्ञातुं वाऽशक्यमतो जीवत्वस्यानादित्वम् । भोक्ता जीवो भोग्यं पृथिव्यादिविकारजन्यमन्नादिकं बहुरूपं ताभ्यां भोक्तृभोग्यार्थाभ्यां युक्तैका प्रकृतिरपि तृतीयाऽजाऽजायमाना नित्याऽनादिरिति यावज्जगतउत्पत्तिस्थिति प्रलयानामनादित्वादेव मायाया अनादित्वं ब्रह्मसत्तयैव द्वयोरात्मलाभाद्वस्तुतोऽसत्त्वमिति । सर्वस्मिन् कार्ये जगति तत्तद्रूपेण व्याप्तस्तत्तन्नामरूपावच्छिन्नो वाससु सूत्रवदोतः प्रो-

तश्च सर्वरूपोऽह्यकर्त्ता निष्क्रियोऽनन्तोऽनन्तशक्तिरात्मा व्याप्त ईश्वर इत्येतत्त्रयं ब्रह्मं ब्रह्मस्वरूपं ब्रह्मात्मकमेव यदा विन्दते प्राप्नोति लभतेऽर्थाद्यथाहाटके कटकादि कल्पितं तथा भगवति प्रकृतिपुरुषौ कल्पितौ वस्तुतो हाटकवदेकएव शुद्धो भगवानिति जानाति तदा विश्वमायानिवृत्तिरित्युत्तरेणान्वयः ॥

भा०—ईश्वरांशत्वेन जीवस्याजत्वं मायाया अपि ब्रह्मात्मकत्वेनैवाजत्वमवगन्तव्यम् । स्वरूपतः स्वातन्त्र्येण तयोरनादित्वे नेहनानास्तिकिंचनेत्यादिश्रुतिविरोधात् अयस्कान्तवदनिच्छत्वादात्मनोऽकर्त्तृत्वं सन्निधिमात्रेण च कर्तृत्वमप्यस्त्येव । एवं व्यवहारदशायामविद्योपाधेर्जीवत्वे समवायिकारणोपाधेश्च प्रकृतित्वेऽभिमतेऽपि ब्रह्मात्मकमेव वस्तुतः सर्वमिति तत्त्वज्ञानमेव मोक्षसाधनमित्याशयः ॥ ९ ॥

भावार्थः–(ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ) जीवकी अपेक्षा ईश्वर ज्ञानस्वरूप और ईश्वरापेक्षासे जीव शरीराद्यभिमानी होनेसे अज्ञ है ईश्वर स्वामी मालिक और जीव स्वनाम उस की मिलिकियतके अन्तर्गत है तथा दोनों जीव ईश्वर अज नाम अनादि हैं ईश्वरांश जीव का जन्म मरणादि प्रवाह कब से चला ऐसा कहना वा जानना अशक्य होनेसे जीवको अनादि

कहा, पर जीवत्व अनन्त नहीं है क्योंकि ज्ञानदशा मे जीव भावका अन्त हो जाता है और (भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ह्यें-काऽजा) भोक्ता जीव तथा पृथिव्यादि विकारों से उत्पन्न होने वाला अनेक रूपोंसे युक्त अन्न भोग्य है इन दोनो से युक्त पूर्ण मेल रखने वाली तीसरी एक प्रकृति भी अजा किसी से उत्पन्न नहीं होनेसे नित्य अनादि है जगत्के उत्पत्तिस्थि-तिप्रलयका प्रवाह कबसे चला इसका आदि न होनेसे का-रण रूप मायाको अनादि कहा है। तथा प्रकृति और जीव दोनोका ब्रह्मसत्ता से ही स्वरूप लाभ होनेके कारण वास्तव में स्वतन्त्ररूपसे दोनों असत् हैं। (विश्वरूपो ह्यकर्त्ताऽनन्त-श्चात्मा) सब कार्य कारणात्मक जगत् मे उसी २ के रूप से व्याप्त वस्त्रोंमें सूत जैसे उस२ वस्त्रके नामरूपसे माना जाता वैसे ही जगत्के सब पदार्थोंमें उसी २के नामरूपसे विद्यमान परमेश्वर भी सबमें सूत्रवत् ओतप्रोत है इसीसे सर्वरूपधारी अकर्त्ता निष्क्रिय अनन्त शक्ति वाला आत्मा ईश्वर (ए-तत् त्रयं ब्रह्म यदा विन्दते) इन तीनों जीव ईश्वर और प्रकृतियो तरंग फेनादिको जल स्वरूप जानने के तुल्य ब्रह्म स्वरूप ब्रह्मात्मक जब जीव जान लेता है तब उस की सब माया सब छल कपट ईर्ष्या द्वेषादि दोष छूट जाते हैं॥

भा०—ईश्वरांश होनेसे जीवका और ब्रह्मात्मकरूपसे ही प्रकृतिका अनादि होना जानो। यदि स्वतन्त्र स्वरूपसे उन दोनों को अनादि माना जाय तो (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) इ-त्यादि श्रुतियोंसे विरोध दोष है। चुम्बकके तुल्य इच्छा र-हित होनेसे आत्मा अकर्त्ता और सन्निधिमात्र से कर्त्ता भी माना जाता है। व्यवहार दशामें अविद्योपाधिका जी-वत्व और उपादानकारणोपाधि आत्माका प्रकृतित्व स्वीकृत होने पर भी जीव और प्रकृति वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप ही है ऐसा तत्त्वज्ञान ही मोक्षका साधन है यही आशय है॥ ९॥

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः। तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥१०॥

इदानीं प्रधानेश्वरयोर्वैलक्षण्यं दर्शयित्वाऽऽत्मतत्त्वज्ञानेनामृतत्वं दर्शयति-महदादिरूपेण विपरिणमत इति प्रधानस्य क्षरत्वम्। संहरति सर्वं स्वस्मिन्निति हर ईश्वरः। अमृतं च तदक्षरममृताक्षरं ब्रह्म हरस्य विशेषणमेतत्। एको देव ईश्वरः क्षरात्मानौ प्रकृतिपुरुषावीशते-ईष्टे तयोः स्वामी प्रभुर्भवति स्वाधिकारे स्वनियमे तौ स्थापयति। तस्य देवस्याभिध्यानाद्योजनादभेदभावेन संयोजनात्तत्त्वभावात्तत्त्वस्य यथार्थभावस्य परमात्मस्वरूपस्य सत्यस्याश्रयणाद् भूयः पुनःपुनरभ्यासेनाभिध्यानादिसेवनाच्चान्ते विश्वस्या सुखदुःखमोहात्मिकाया मायाया आत्मत्वापन्नायाः प्रकृतेर्निवृत्तिर्भवति ॥

भा०-प्रधानेन तत्कार्यजन्यभोगेन च जीवस्य विशिष्टः सम्बन्धएव बन्धः परमा-

त्मतो विमुखीकरणहेतुश्चास्ति प्रकृतिर्मम नि-बन्धना जड़ा ततः पृथग्भावमन्तरेणेश्वरप्राप्तिरसम्भवा । अतः प्रकृतेर्हेयत्वमीश्वरस्योपादेयत्वं स्वस्य च तादात्म्यं यदा जानाति तदैव मुक्तिहेतुकं ज्ञानं जायते ॥ १० ॥

भावार्थः—अब माया और ब्रह्मकी विलक्षणता दिखाके आत्माके तत्वज्ञानसे मोक्ष दिखाते हैं—(क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः) महत्तत्त्वादि रूप से परिणाम को प्राप्त होता इस कारण प्रकृति नामक माया क्षर नाम विनाशधर्मक है तथा प्रलय समयमें सब संसारको अपने भीतर हरण कर लेता इस से संहार कर्त्ता ईश्वर हर नित्य मुक्त और अविनाशी है (एको देवः क्षरात्मानावीशते) एक ही देव ईश्वर प्रकृति और पुरुष नाम जीवका स्वामी होता उन दोनों को अपने अधिकार और नियममें सदा स्थापित करता है ईश्वरके नियम वा इच्छासे विरुद्ध जीव तथा प्रकृति कुछ नहीं कर सकते (भूयश्च तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावात्) वार २ उस देव ईश्वरका समाधि द्वारा विशेष कर निरन्तर ध्यान करने, अभेदभावसे संयोजन करने और तत्त्व नाम परमात्मस्वरूप यथार्थ भाव सर्वथा सत्य का आश्रय करने से (अन्ते विश्वमायानिवृत्तिः) अन्त में आत्मभाव को प्राप्त हुई सुख दुःख मोहात्मिका सब बुद्धि आदि रूप माया की भी निवृत्ति हो जाती है तब पुरुष केवल होनेसे मुक्त हो जाता है॥

भा०—प्रधान प्रकृति तथा उसके कार्य स्थूल जगत्सम्बन्धी भोगोंके साथ जीवका विशेष सम्बन्ध होना ही बन्धन तथा परमात्मासे विमुख करने वाला है । प्रकृति माया सूक्ष्म

को बांधने वाली जड़ है उस से पृथक् हुए विना ईश्वर की प्राप्ति असम्भव वा दुर्लभ है ऐसा शोचा करें। इससे प्रकृति के त्याज्य होने, ईश्वर के ग्राह्य होने और अपने तादात्म्य सम्बन्धको जब जीव यथावत् जान लेता है तभी मुक्ति का हेतु ज्ञान हो जाता है ॥ १० ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः। तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥ ११ ॥

अ०—तं देवमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वपाशानां बन्धहेत्वविद्यादिक्लेशानामपहानिस्तैः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममरणयोः प्रहाणिः प्रकृष्टा हानिस्तेनाखिलमेव दुःखं हीयते दूरीभवति। तस्येश्वरस्य पुनरप्यभिध्यानाद् देहभेदे पूर्वकर्मोपात्तशरीरत्यागकाले विश्वमखिलमैश्वर्यमस्य तादृशं प्रकृतिपुरुषद्वयापेक्षया तृतीयं पदं ब्रह्म प्राप्य केवल एकः प्रकृतिसङ्गाद्विमुक्त आप्तकामो मुक्तिपदं प्राप्तो भवति मन्यते च प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः ॥

भा०—सर्वमुमुक्षुपुरुषैः सर्वदा पूर्वं मिथ्याज्ञाननिवृत्तये प्रकृष्ट उपायः कार्यस्तेनैवोत्तरोत्तरं सर्वाभीष्टसिद्धिः सुलभा सम्भाव्यते। मिथ्याज्ञानापाये पराधीनतादिसर्वबन्धनानां निवृत्तौ दुःखाभावः प्रथमा कक्षा, नष्टेषु च मिथ्याज्ञानादिदोषेषु मरणादिभयनिवृत्तौ शान्तिलाभो द्वितीया दशा, तदनन्तरमीश्वरबोध ईश्वरप्राप्तिस्तृतीयपरिणामो मुक्तिः ॥११॥

भावार्थः—(देवं ज्ञात्वा सर्वपाशापहानिः) उस देव ईश्वर को जानकर बन्धन के हेतु सब अविद्यादि सूक्ष्म क्लेशों का भी नाश हो जाता है (क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः) और क्लेशों के क्षीण होजाने से जन्म मरण की उत्तम प्रकार सर्वथा हानि नाश हो जाता (तस्याभिध्यानाद् देहभेदे विश्वैश्वर्यं तृतीयम्) उस ईश्वर का वार २ ठीक ध्यान करने से पूर्व कर्मानुसार धारण किये शरीरका त्याग नाम मरण होने के समय सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके स्वामी प्रकृति तथा पुरुष की अपेक्षासे तृतीय ब्रह्मपद को प्राप्त होके (केवल आप्तकामः) प्रकृति के सङ्ग से छूट कर केवल अभीष्ट कामना को प्राप्त हुआ मुक्तिपदको प्राप्त होता और मान लेता है कि मैंने प्राप्त होने योग्यको प्राप्त कर लिया तथा मेरे नष्ट होने योग्य क्लेश छूट गये ॥

भा०—सब मुमुक्षु पुरुषोंको सब समयमें पहिले मिथ्याज्ञान को छुड़ानेके प्रबल उपाय करना चाहिये। उसीसे आगे २ सुलभताले सब अभीष्टोंकी सिद्धि होना सम्भव है। मिथ्या ज्ञान

छूटने पर पराधीनतादि सब बन्धनोंकी निवृत्तिमें दुःख का अभाव प्रथम कक्षा, मिथ्याज्ञानादि दोषोंके नष्ट होने पर मरणादिका भय छूटनेसे शान्ति प्राप्त होना द्वितीय दशा, तदनन्तर ईश्वरका बोध ईश्वरकी प्राप्ति यह तीसरा परिणाम बदलनाही मुक्ति है ॥११॥

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥१२॥

अ०—एतदुक्तं तृतीयं ब्रह्म नित्यमेव स्वस्य आत्मन्यन्तःकरणे जीवस्वरूपेणाऽवस्थितमेव ज्ञेयं नान्यत्र वहिः क्वाप्यन्वेष्यम् । कठोपनिषदि चोक्तम् "तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्,, हि यस्मादतो ब्रह्मणः परं प्रकृष्टं कल्याणहेतुकं न किमपि वेदितव्यमस्ति । भोक्ता जीवो भोग्या प्रकृतिर्माया प्रेरिता सर्वान्तर्यामीश्वरः सर्वं त्रिविधमप्येतद् ब्रह्म ब्रह्मैव वेदे प्रोक्तं ब्रह्मणो भिन्नः कोऽपि भोक्त्रादिर्नास्ति भोक्त्रादिनामरूपैर्ब्रह्मैवावस्थितमित्याशयः ॥

भा०—योगसमाधिना हृद्येव ब्रह्मणो ज्ञानायोद्योगः कार्यः। तेन बहिरन्वेषणाय प्रयतमाना भ्रान्ता इत्युक्तं भवति। लोकेऽपि यथा प्रधाने ज्ञातेऽप्रधानमनायासेनैव ज्ञातं भवति तथैव सर्वस्वामिनि ब्रह्मणि तादात्म्य भावेन ज्ञाते सर्वमेव ज्ञायते ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(नित्यमेवैतदात्मसंस्थं ज्ञेयम्) इस पूर्व श्लोक में कहे तीसरे परमात्मा को अपने अन्तःकरण में नित्य ही जीव स्वरूप से अवस्थित जानना चाहिये किन्तु कहीं बाहर नहीं खोजना चाहिये अपने भीतर अन्तःकरण में ही मनुष्य को ईश्वर का ज्ञान वा प्राप्ति हो सकती है । कठोपनिषद् में लिखा भी है कि "जो ज्ञानी लोग अपने अन्तःकरण में ही उस ईश्वर को देखते है उन ही को सनातनशान्ति और सुख प्राप्त होता है अन्यों को नहीं" (अतः परं वेदितव्यं किञ्चिन्नहि) जिस कारण इस शारीरब्रह्म से परे उत्तम वा अधिक जानने योग्य और कुछ भी नही है इससे अपने भीतर ही ब्रह्म को जाने । एक सर्वस्वामी मुख्य वस्तु ईश्वर के जान लेने पर वा उस की प्राप्ति हो जाने पर (भोक्ता, भोग्य प्रेरितारं च मत्वा) भोक्ता जीव, कार्य कारण रूप स्थूल सूक्ष्म भोग्य जगत् रूप माया और प्रेरक अन्तर्यामी परमेश्वर इस सब त्रिविधको मानके भी वेदमें (सर्वमेतत्त्रिविधं ब्रह्मम् प्रोक्तम्) इस सबको त्रिविधब्रह्म कहा है ब्रह्मसे भिन्न भोक्तादि स्वतन्त्र कोई वस्तु नहीं है अर्थात् भोक्तादि नाम रूपो से एक ब्रह्म ही अवस्थित है यही आशय जानो ॥

भा०—योग समाधि द्वारा अपने हृदय में ही ब्रह्म को जानने का उद्योग करना चाहिये। इस कारण ईश्वर को बाहर खोजने का उद्योग करने वाले भ्रान्ति में हैं, यह सिद्ध हो जाता है। लोक में भी जैसे प्रधानके जान लेने वा मिल जाने पर अप्रधान का मेल वा ज्ञान स्वयमेव हो जाता वैसे ही सर्वस्वामी ब्रह्म को अपने साथ तादात्म्य भावसे जानलेने पर सभी शेष जान लिया जाता है ॥१२॥

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्त्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः। स भूयएवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥१३॥ स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत् ॥१४॥ तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः। एवमात्मात्मनिगृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥१५॥ सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्। आत्मवि

ध्यातपोमूलं तद् ब्रह्मोपनिषत्परं तद् ब्रह्मोपनिषत्परम् ॥ १६ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः ॥

अ०—यथा वंशारणिदीपशलाकादिकारणवस्तुन्यवस्थितस्य वह्नेर्मूर्त्तिः साक्षाद्रूपं न दृश्यते नैव च तस्य सूक्ष्मरूपावस्थितस्य नाशोऽभावोऽस्ति यद्यभावः स्यात्कुत उत्पद्येत । स भूयः पुनःपुनरेवेन्धनयोनिगृह्यो घर्षणमन्थनादिना साक्षान्निस्सरति । तद्वा तद्वद्देहे ब्रह्मणः प्राकट्यमप्राकट्यं चोभयमेवास्ति । प्रणवेन घर्षणादिना ब्रह्म गृह्यते साक्षाज्ज्ञायते । स्वस्य देहमरणिं प्रणवं चोत्तरारणिं कृत्वा ध्यानयोगेन निर्मथनाभ्यासान्निगूढाग्निवद्देवं दीप्यमानं ज्योतिःस्वरूपं ब्रह्म पश्येत्साक्षात्कर्त्तुं यतेत । तिलेषु व्याप्तं तैलं यथा पीडनेनोपलभ्यते, दधनि व्याप्तमदृश्यं घृतं यथा मन्थनेन साक्षाज्जायते । स्रोतस्सु नद्याः समीपे भूमिभागखननेन यथाऽऽपो व्यज्यन्ते, अरणीषु मन्थनेन

च यथाऽग्निराविर्भवति। एवमात्मेश्वर आत्मनि स्वस्यैवान्तःकरणे गृह्यतेऽसौ परोक्षोऽपि तेन जनेन साक्षात् क्रियते यएनं सत्येन व्याजादिकं त्यक्त्वा सर्वभूतहितार्थवचनेन व्यवहरन् ज्ञानेन्द्रियमनसामेकाग्रतारूपेण जितेन्द्रियत्वेन तपोऽनुष्ठानेन चाऽनुपश्यति सर्वं पश्यन्तमनुपश्यति । क्षीरे सर्पिरिवार्पितं व्याप्तं सर्वव्यापिनमात्मानमीश्वरमात्मविद्यातपसोश्च मूलं प्रधानं प्रयोजनमुद्देशः, आत्मविद्यातपांसि च ब्रह्मज्ञानमुद्दिश्यैवोपदिष्टानि । तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्तीत्यादिकथनादवसेयमेतत्। एषह्येव साधु कर्म कारयति। उपनि०। ददामिबुद्धियोगंतं येनमामुपयान्तिते इति भगवद्गीतासु । उपनिषदएव परा प्रकृष्टबोधहेतुका यस्य येन वा सुखोपायेन ब्रह्मज्ञायते सएवोपनिषत्पदवाच्यइत्युभयथाप्येकएवार्थो निस्सरति । द्विर्वमत्राध्यायपरिसमाप्तिबोधनार्थं विज्ञेयम् ॥

भा०—एतत्पद्यचतुष्टयेन "एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्,, इति संक्षेपतो द्वादशपद्योक्तविषयस्य प्रपञ्चो व्याख्यानमिति यावत् ।

तज्जपस्तदर्थभावनमित्यादियोगशास्त्रोक्तप्रकारेण यो जिज्ञासुर्दीर्घकालावधि नैरन्तर्यैणैकाग्रचेतसा जितवाक्कायमानसो वाचकप्रणवेन वाच्यमीश्वरमुपास्ते ध्यायति तन्निष्ठस्तत्परस्तद्बुद्धिर्भवति स कालेन स्वात्मन्येव साक्षाज् ज्ञानचक्षुषा पश्यत्येवेश्वरमिति न कश्चिद्विकल्पः केनापि कर्त्तुं युक्तः ॥ १३–१६ ॥

भा० (यथा योनिगतस्य वन्हेर्मूर्त्तिनं दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः) जैसे वास अरणि और दीवासलाई आदि अपने कारण में रहते हुए अग्नि का साक्षात्रूप नहीं दीख पड़ता और न उन वास आदिमें कारणरूप अग्नि के चिन्हका अभाव होता यदि अभाव होता तो उनमें से उत्पन्न ही कहां से वा कैसे होता ? (स भूयएवेन्धनयोनिगृह्यः) वह अग्नि फिर २ वार २ ईधन के संयोग से घिसने मथने आदि द्वारा साक्षात् निकलता प्रकट होता जल उठता है (तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे) उसके तुल्य इस मानुष देह में ओम् की उपासना द्वारा परमेश्वर साक्षात् ज्ञात होता और ठीक उपासना हुए विना शरीर में अप्रकट तिरोभूत रहता अर्थात् इसी शरीर मे प्रकटता अप्रकटता दोनो होती हैं ॥ (स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवंचोत्तरारणिम्) अपने शरीर को अर्थात् अन्तःकरण की वृत्तियोंको नीचेकी अरणि और ओंकारको ऊपरकी द्वितीय अरणि कर अर्थात् ओंकारके साथ ही अपनी बुद्धि इन्द्रिय, और शरीरको जोड़कर (ध्याननिर्मथनाभ्यासात्) ध्यानयोग के माथ मथने के अभ्यास से (निगूढवद्देवं पश्येत्) वास आदि में गुप्त अग्नि के समान प्रकट हुए ज्योतिःस्वरूप अपने

हृदय में सब ओर से प्रकाशमान परमेश्वर को साक्षात् देख सकता है। (तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषुचाग्निः) जैसे तिलोंमें व्याप्त अदृष्ट तेल कोल्हू मे डालके पेरने से निकलता जैसे प्रत्यक्ष न दीखता हुआ दही मे व्याप्त घी मन्थन करने से साक्षात् दीखने लगता, जैसे नदी के समीप सोता में पहिले से अदृष्ट जल खोदने से चू आता और जैसे अरणी नामक लकड़ी में व्याप्त अदृष्ट अग्नि मथने वा घिसने से प्रकट हो जाता है (एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ) इसी प्रकार उस परोक्ष भी सर्वत्र व्याप्त ईश्वर को वह जीव अपने स्वरूप में ग्रहण नाम साक्षात् करता है कि (य एनं सत्येन तपसाऽनुपश्यति) जो बहाना मात्र छोड़ के सब प्राणियों के हित कारी वचनों का व्यवहार करता हुआ जितेन्द्रियतारूप तप से वा सच्चे मन से तथा चित्त की एकाग्रता के साथ तप के अनुष्ठान से सर्वद्रष्टा इस परमात्मा को ज्ञानदृष्टि से देखता है। (क्षीरे सर्पिरिवार्पितं सर्वव्यापिनमात्मानम्) दूध में जैसे घी व्याप्त होता वैसे सब पदार्थों जड़ चेतनों में व्याप्त (आत्मविद्यातपोमूलम्) आत्मविद्या आत्मा के वर्णन का विषय और तप की प्रशंसा या व्याख्यान जिसकी प्राप्ति के उद्देश से प्रचरित किया गया है अथवा आत्मविद्या और तप नाम उसकी प्राप्ति का उपाय जानने का भी जो मूल है अर्थात् ईश्वर ही जिसपर कृपा करता है उससे वैसा उत्तम तप करा देता है तथा वही अपनी प्राप्ति की बुद्धि मनुष्यको देता है जिससे उसको जानलेते वा साक्षात् कर लेते हैं। तथा (तद्ब्रह्मोपनिषत्परं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम्) जिस का बोध वा ज्ञान होने वा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाने के लिये उपनिषद् पुस्तक ही परमउपयोगी हैं वा यों कहो कि ईश्वर प्राप्ति का सब से अधिक वा अच्छा मार्ग बतलाते

वाले उपदेश का नाम ही उपनिषद् है। अर्थात् ब्रह्मज्ञानके लिये मुख्य उपाय उपनिषद् है। वा जो मुख्य उपाय है उसी का नाम उपनिषद् है। इस दोनो प्रकार के कथन का एकही आशय है। और अध्याय की समाप्ति जताने के लिये यहां द्विर्वचन किया है॥

भा०—"इस ब्रह्मको अपने अन्तःकरण में ही स्थित जानो," इस प्रकार बारहवें मन्त्रमें संक्षेप से कहे विषय का इन चार मन्त्रों से व्याख्यान वा विस्तार किया है। "उस ओ३म् पद का वाणी से जप उच्चारण और उसके वाच्यार्थ ईश्वर का भावन नाम उसमें धार २ चित्त ठहराना वा लगाना," इत्यादि योगशास्त्र में कहे प्रकार से जो जिज्ञासु पुरुष दीर्घकाल पर्यन्त एकाग्रचित्त से मन वाणी और शरीर को वशीभूत करके वाचक ओ३म् पद से वाच्य ईश्वर की निरन्तर ध्यान उपासना करता उसी में निष्ठा रखता उसी में तत्पर रहता उसी में बुद्धि लगाता है वह काल पाकर अपने अन्तःकरण में ही ज्ञान चक्षु से ईश्वर को साक्षात् अवश्य ही देखता है इस में किसी को कुछ विकल्प नहीं करना वा मानना चाहिये॥ १३–१६॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वाभिधमासिकपत्र
सम्पादकेन भीमसेनशर्मणा
निर्मितेश्वेताश्वतरोपनिषद्
भाष्ये प्रथमोऽध्यायः
समाप्तः॥

अथ द्वितीयाऽध्यायारम्भः।



युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥१॥

अ०—ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवंपश्येन्निगूढवदिति प्रथमाध्याये ध्यानमुक्तं तस्यैव द्वितीयाध्याये व्याख्यानं क्रियते—सविता मनआदीनां प्रेरकोऽन्तरात्मा प्रथमं ध्यानकालारम्भे मनो युञ्जानः समाहितं कुर्वन्नग्नेः शरीरव्याप्तस्य बुद्धेः कारणभूतस्य ज्योतिः प्रकाशं देहे निचाय्य निश्चित्य तत्त्वाय तत्त्वबोधाय पृथिव्या अधि पार्थिवदेहस्य बुद्धिस्थाने धियो धारणावतीश्चिन्तनपरा वा बुद्धीराभरदाहरेत्स्वाधीनाः कुर्यात्। यतः सविता सर्वप्रेरकः परमेश्वरोऽपि प्रथमं सर्गारम्भे प्राणिदेहेन साकं मनोयोगं कुर्वन् कर्त्तुं वेच्छन्नग्नेर्ज्योतिः स्थानं निचाय्य निश्चित्य पृथिव्या अधि पार्थिवशरीरस्य मध्ये तत्त्वाय तत्त्वबोधाय धिय आभरदाभरत्यादधाति ॥

भा०—प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारस्ततो मनः प्रादुर्भवति । महत्पदवाच्या च सत्त्वगुणात्मिका बुद्धिः सा चाहङ्कारप्रधानस्य मनसः कारणं कारणाधीनं च सर्वत्रैव जगति कार्यं नियमेनैव लक्ष्यते । कठोपनिषदि चैतदभिप्रेत्यैव "बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ मनसश्च परा बुद्धिः,, इत्युक्तम् । यथा-चेश्वरेण सर्गस्थितिलयेषु यानि कार्याणि सम्पादितानि तथैव यथाकालं मनुष्यः कुर्वाणोऽनिष्टं जहातीष्टं चाप्नोति तस्मादयमेव धर्मः । यथा पाकं चिकीर्षन् कोपि पिष्टादिकारणमादौ सम्पादयति सन्निहिते चादुष्टे सम्यक्कारणे कार्योत्पत्तिः सुलभा । एवमत्र मनोनिग्रहे बुद्धिरेव कारणं यद्यात्मनः स्वामिनो बुद्धिः स्वाधीना तदा सारथिरूपबुद्धेरप्याधीनं प्रग्रहरूपं मनो भवति तथा च सति मनोनिरोधः सुकरः । पूर्वोक्तध्याननिर्मथनाभ्यासादीश्वरसाक्षात्काराय चादौ मनोनिग्रहेणावश्यं भाव्यम् । न च वायुकार्यमनसो निरोधमन्तरेण प्रदीपशिखावद्बुद्धेः स्थैर्यं सम्यक् प्रकाशश्च सम्भवति । नचास्थितप्रज्ञेन

ध्यानादिकं कर्त्तुं शक्यते तस्मादीश्वरसाक्षात्काररूपतत्त्वबोधाय मनोनिरोधं कुर्वता कर्त्तुमिच्छता वा पुरुषेण बुद्धेर्ज्योतिः स्थानं सुनिश्चित्य तत्र बुद्धिः स्थाप्या तथा सति मनोनिग्रहेण तत्त्वबोधः कर्त्तुं शक्यते तत्सिद्ध्यर्थं च ज्ञानसम्पादनपरस्य मम बाह्यविषयज्ञानादुपसंहृतं मनः परमात्मन्येव संयोजयितुमग्न्याद्यनुग्राहकदेवतानां यत्सर्ववस्तुप्रकाशनसामर्थ्यं तत्सर्वमस्मद्वागादिषु सविता प्रेरको देवः सम्पादयेद्यत्प्रसादाद्योगोऽवाप्यतइति प्रार्थनीयम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(ध्याननिर्मथनाभ्यासा०) इत्यादि कथन द्वारा ध्यान साधनसे आत्मज्ञान होना प्रथमाध्याय में कह चुके हैं उसी का व्याख्यान द्वितीयाऽध्याय में करते हैं। जिस कारण सविता नाम सब जगत्का उत्पादक परमेश्वर भी पहिले सृष्टिके आरम्भमें मनुष्यादि शरीरोंके साथ मनका संयोग करनेकी इच्छा करता हुआ सूक्ष्माग्नि तत्त्वके ज्योतिः स्वरूप प्रकाशके स्थानको निश्चित करके पार्थिव शरीरके भीतर तत्त्वज्ञान की सिद्धिके लिये बुद्धियोंको स्थापित करता है इसी प्रकार (सविता प्रथम मनो युञ्जानः) मन आदि इन्द्रियोंका प्रेरक अन्तरात्मा प्रथम ध्यानके आरम्भमें मनको समाहित स्थिर एकाग्र करता हुआ (अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य) शरीर में व्याप्त बुद्धिके कारण रूप सूक्ष्माग्नितत्त्वके प्रकाश स्थानको शरीरमें निश्चय करके (तत्त्वाय पृथिव्या अधि धिय

आभरत्) तत्त्वबोधके लिये पार्थिव शरीरके बुद्धिस्थान में धारणावती चिन्ता में तत्पर बुद्धियोंको अच्छे प्रकार धारण नाम स्वाधीन करता है ॥

भा०-प्रकृति से महत् महत् से अहङ्कार और उससे मन उत्पन्न होता है। और महत्तत्त्वका ही नाम सत्त्वगुण प्रधान बुद्धि है और वह बुद्धि अहङ्कार में प्रधान मनका कारण है तथा कारणके अधीन कार्यका होना जगत्में सर्वत्र नियमके साथ ही दीखता है। इसी अभिप्रायसे कठोपनिषद्में लिखा-वा कहा है कि "शरीररूप रथ पर बुद्धि सारथि और मन लगाम है इन्द्रिय घोड़े है सारथिके हाथ में वा अधीन लगाम का रहना प्रसिद्ध ही है। तथा मनसे बुद्धि परे है,, सो कार्य से कारण पर उत्तम वा सूक्ष्म होता ही है। सृष्टि स्थिति और प्रलयके समय जिन कार्यों को ईश्वरने जिस प्रकार वा जिस क्रम अथवा जिस नियमके साथ उत्पन्न किया है वैसे ही उन २ कामोंको करता हुआ मनुष्य अनिष्टसे बचता छूटता और इष्टको प्राप्त होता वा जितना कर्त्तव्य नियमानुसार करता वा कर पाता है उतने इष्टका भागी होता है। इससे यही धर्म है। जैसे पाक बनाने की इच्छावाला कोई पुरुष पहिले भोजनके साधन आटा आदि को जोड़ता वा सञ्चित करता है और निर्दोष ठीक साधन के होनेपर प्रत्येक काम ठीक अच्छा सुगमता से सिद्ध हो सकता है। वैसे यहां मन को वशीभूत करने में बुद्धिही मुख्य कारण है यदि स्वामिरूप आत्माके अधीन बुद्धि रहती है तो सारथिरूप बुद्धि के भी अधीन मन हो जाता है इस प्रकार सुगमतासे मनकी चञ्चलता रुकजाती मन स्थिर होजाता है। तब पूर्वोक्त ध्यान सम्बन्धी निर्मथनके अभ्यासमे ईश्वरका साक्षात्कार जाननेके लिये प्रथम मनकी स्थिरता शान्ति अवश्य होनी चाहिये।

किन्तु वायुके कार्य नाम सन्तान रूप मनकी स्थिरता वा रुकावट हुए विना दीपककी ज्योतिके समान बुद्धिकी स्थिर दशा और सम्यक् प्रकाश नहीं हो सकता और जिसकी बुद्धि स्थित नहीं ऐसा मनुष्य ध्यानादि कुछ नहीं कर सकता इस कारण ईश्वरके साक्षात्काररूप तत्त्वबोधके लिये मन को स्थिर करते वा करनेकी इच्छा करते हुए पुरुषको चाहिये कि बुद्धिके ज्योतिःप्रकाश स्थानको सम्यक् निश्चय करके उसी स्थान में बुद्धिको स्थापित करे ऐसा होनेपर मनके रुक जानेसे ज्ञानकी दीप्ति होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर सकता है और इसकी सिद्धिके लिये ज्ञान सम्पादनमें तत्पर हुए मेरे मनको बाह्य विषयसे हटाकर परमात्मा में संयुक्त करनेके लिये अग्न्यादि अनुग्राहक देवताओंका जो सर्ववस्तुओंको प्रकाशित करनेका सामर्थ्य है उस सब सामर्थ्य को हमारे वाणी आदि इन्द्रियोंमें प्रेरक सविता देव प्राप्त करे कि जिस की कृपासे योगप्राप्त होता है ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्त्या ॥२॥

अ०—वयं मनुष्या बुद्धिस्वायत्तीकरणपुरःसरं युक्तेन समाहितेन निरुद्धेन वा मनसा सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो देवस्येश्वरस्य सवेऽनुज्ञायां ध्यानादिशुभकर्माणि स्वर्गाय विशिष्टसुखहेतुभूतपरमात्मप्राप्तये परमात्मवचनोऽत्रस्वर्गशब्दः । तस्यैवसुखरूपत्वादितरसुखस्य तदंशत्वाच्च शक्त्या यथासामर्थ्यं

निरन्तरमवश्यं प्रयतामहइति दृढो व्यवसायः कार्यः ॥

भा०-दुश्चरितान्मनो निरुध्यैव मनुष्यो ज्ञानयज्ञादिषु प्रवृत्तोऽभीप्सितं सुखविशेषरूपं परमात्मानमाप्नोति न च मनस्यसमाहितइति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वयं युक्तेन मनसा) हम मनुष्य लोग बुद्धि को स्वाधीन करने पूर्वक युक्त समाहित वा विषयोंकी फसावट से अलग हुए शुद्ध मनसे (सवितुर्देवस्य सवे) सबके प्रेरक अन्तर्यामी देव ईश्वरकी ध्यानादि शुभ कर्म रूप आज्ञामें (सुवर्गेयाय शक्त्या) विशेष सुख स्वरूप परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये यथा शक्ति निरन्तर प्रयत्न अवश्य करें। यह हमको दृढ निश्चय करना चाहिये कि सुख और शान्ति मिलनेका ठीक यही मार्ग है।

भा०—दुराचारसे मनको हटा कर ही ज्ञान यज्ञादिके लिये प्रवृत्त हुआ मनुष्य अभीष्ट विशेष सुख स्वरूप परमेश्वरको प्राप्त कर सकता है किन्तु मनके स्थिर हुए विना नहीं ॥ २ ॥

युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥३ ॥

अ०-सविता प्रेरकोऽन्तर्यामी विषयेभ्यः प्रत्यावृत्तान्स्वः प्रत्यगात्मवृत्तिजन्यसुखविशेषं यतः प्राप्नुवतो धिया धारणावत्या सूक्ष्मबुद्ध्या

तत्त्वबोधेन दिवं द्योतनशीलं प्रकाशमयं बृहन्महद्ब्रह्म ज्योतिः प्रकाशं करिष्यत आविष्करिष्यतो देवान् चक्षुरादीनीन्द्रियाणि मनोवृत्तिविशेषान् युक्त्वाय योजयित्वा स्वकृपया विषयेभ्यः प्रत्यावृत्त्य तान् प्रसुवाति प्रसुवेत् शुभमार्गे तान् सविता प्रेरयेदिति प्रार्थयामहे ॥

भा०—यथा चोदयकालीनः सवितृपदवाच्यः सूर्यः प्राणिनः स्वशक्तिप्रवेशेन प्रबोध्य कार्येषु प्रयोजयति । जगति सूर्यएव देवो मुख्यः प्रबोधकः प्रेरकश्च तस्मादेव तदुदयकाले प्रायेण प्राणिनो जाग्रति । सूर्यादिप्रबोधकप्रेरकाणामपि निरतिशयप्रेरकः प्रबोधकश्चानादिसिद्ध ईश्वरः । सएव यान् स्वकार्येषु प्रेरयति ते सद्यो जगति जाग्रति । स्वस्येष्टानिष्टे विभज्य जानन्ति च येन यत्कार्यसिद्धिर्नियोगतो हेतुतश्च सम्भाव्यते तेनैव तत्साध्यमिति नियमएव सर्वत्रोपलभ्यते तस्मान्न नियमविरुद्धं किमपि कार्यमिति । इन्द्रियाणां विषयेभ्यो निरोधएव प्रत्यगात्मविचारवैशा-

रद्यस्य प्रधानं कारणं सचान्तर्यामिप्रेरकसवितृदेवानुग्रहेण निरोधः सुसाध्यस्तस्मात्प्रार्थना स्तुतिश्च सुगम उपायो योगसाधनस्य तथा च सति मनसः स्थैर्यं सुखानुभवो ब्रह्मज्ञानं चेति सर्वं सुलभम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सविता स्वर्यतो धिया दिवं बृहज्ज्योतिः करिष्यतो देवान् युक्त्वाय) प्रेरक अन्तर्यामी ईश्वर विषयोंसे पीछेको फिर लौट इन्द्रिय शक्तियोंके अन्तःकरणमें रुकनेसे बुद्धि वा ज्ञानकी अधिकतासे उत्पन्न हुए सुख विशेषको प्राप्त होते हुए और धारणावती सूक्ष्म बुद्धि द्वारा हुए तत्वज्ञानसे प्रकाशशील अनन्त ब्रह्मज्योतिको प्रकट करते हुए चक्षु आदि इन्द्रिय रूप देवों नाम मनको चक्षु आदि इन्द्रियरूप वृत्तियो को अपनी कृपाके साथ विषयों की ओरसे हटा वशीभूत निरुद्ध बुद्धिके साथ सयुक्त करके (तान् सविता प्रसुवाति) उन इन्द्रिय देवोंको सविता प्रेरक अन्तर्यामी देव शुभ मार्गमें चलनेके लिये प्रेरणा करे ऐसी प्रार्थना हम लोग करते हैं ॥

भा०—जैसे उदय होते समय सविता नामक सूर्य अपनी प्रेरक शक्तिके प्रवेश द्वारा प्राणियोंको जगा कर उन २ के कामोंमें लगाता प्रेरणा करता है। सूर्य देवताही जगत्में मुख्य प्रेरक और जगाने वाला है इसी कारण सूर्योदयके समय प्रायः मनुष्यादि जागते हैं। सूर्यादि प्रबोधक और प्रेरकोंका भी सर्वोपरि प्रेरक और प्रबोधक अनादि सिद्ध ईश्वर है वही जिन मनुष्योंको अपने २ कर्त्तव्यमें प्रेरित करता है वे जगत्में शीघ्र ही जाग जाते और अपने इष्ट अनिष्टको विभागके साथ जानने लगते हैं। और जिसके द्वारा जिस कार्यकी सिद्धि नियम वा हेतुता

पूर्वक अवश्य हो सकती है किन्तु अन्यके द्वारा उस कार्यकी वैसी सिद्धि नहीं हो सकती उसीसे उसको सिद्ध करना चाहिये यह नियम सर्वत्र उपलब्ध होता है इस लिये नियम विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहिये इन्द्रियोंका विषयोंसे रोकना ही भीतरी विचारकी वृद्धि और स्वच्छताका कारण है वह इन्द्रियोंका निरोधरूप योग अन्तर्यामी प्रेरक सविता देवके अनुग्रहसे सुसाध्य है तिससे अन्तर्यामीकी स्तुति प्रार्थना ही योग साधनका सुगम उपाय है ऐसा होने पर मनकी स्थिरता सुखका अनुभव और ब्रह्मज्ञान यह सब होना सुगम वा सुलभ है ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रादधे वयुना विदेक इन्मही
देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥

अ०—यो वयुनावित्प्रज्ञावेत्ता बुद्धिसाध्यसर्वकार्याणां तत्त्वतो वेत्ता सर्वज्ञोऽन्तर्याम्येकइदेकएव होत्रा कल्याणहेतुका धर्म्या यज्ञादिक्रिया वेदद्वारा विदधे विधानं कृतवान् तस्य विप्रस्य विशेषेण व्याप्तस्य बृहतोऽनन्तस्य विपश्चितः सर्वज्ञस्य देवस्य द्योतनात्मकस्य सवितुरन्तर्यामिण ईश्वरस्य मही महती परिष्टुतिस्तैः कर्त्तव्या ये विप्रा मेधाविनः

प्रकृष्टसूक्ष्मस्थिरबुद्धियुताः प्रत्यगात्मविचारे रता मनो युञ्जते निरुन्धन्ति विषयेभ्यः प्रत्यावृत्य बुद्धितत्त्वेन स्वकारणेन योजयन्ति । उतापि धियो बुद्धीन्द्रियाणि मनः सङ्गात्प्रत्यावृत्यात्मना साकं युञ्जत आत्मविचारे प्रवर्त्तयन्ति । आतश्चोपसर्गइति सूत्रेण कप्रत्ययान्तः प्राधातोर्विप्रशब्दः। विपश्चितइति मेधाविनाम वयुनेति च प्रज्ञाया नाम निघण्टौ ॥

भा०-मनसो ज्ञानेन्द्रियाणां च समाधानं स्थैर्यं विषयवासनातो निवृत्तिं चेच्छद्भिर्जनैः सवितृपदवाच्यस्यैकस्यानन्तस्य सर्वज्ञस्यान्तर्यामिणः सर्वप्रेरकस्य परमात्मनो दीर्घकालावधि नैरन्तर्येणैकाग्रचेतसा विशिष्टा स्तुतिः कार्या । अनन्यसाध्या च विषयवासनानिवृत्तिर्यथा चोदकसाध्यां पिपासानिवृत्तिमन्यसाधनेन चिकीर्षतः फलावाप्तिरसम्भवा तथैवात्राभ्यासवैराग्यादिसाधनैर्मनोवृत्तिनिरोधावसरे परमात्मशरणागतिमन्तरेण नास्त्यन्या कापि ततोधिका तत्तुल्या वा गतिरिति ।४।

भापार्थ —जो (वयुनाविदेकइद्धोत्रा विदधे) बुद्धि से होने वाले मानस गुप्त सब कामों का भी जानने वाला अन्तर्यामी एक ही ईश्वर विना किसीकी सहायता लिये कल्पारम्भ

की हेतु धर्मानुकूल यज्ञादि क्रियाओंका वेद द्वारा विधान करता अर्थात् कर्त्तव्य की आज्ञा देता है उन (विप्रस्य वृहतो विपश्चितो देवस्य सवितुर्मही परिष्टुतिः) विशेष कर सर्व व्याप्त अनन्त सर्वज्ञ सबको चेतन करने वाले प्रेरक अन्तर्यामी ईश्वर की बड़ी अधिकतर स्तुति उन लोगोंको करनी चाहिये वा वे कर सकते हैं कि जो (विप्रा मनो युञ्जत उत धियो युञ्जते) उत्तम सूक्ष्म स्थिर बुद्धि वाले भीतरी विचार में तत्पर बुद्धिमान् लोग मनको और ज्ञानेन्द्रियोंको योगाभ्यास द्वारा ठीक करते हैं अर्थात् विषयोंकी भोगवासना से मनको तथा ज्ञानेन्द्रियोंको पीछा हटाके आत्मविचार में लगाते हैं ॥

भा०—मन और ज्ञानेन्द्रियोंकी सावधानता स्थिरता और विषयवासनाकी निवृत्ति चाहते हुए मनुष्योंको उचित है कि वे सवितृपदवाच्य अनन्त सर्वज्ञ सर्व प्रेरक अन्तर्यामी एक परमेश्वरको ही बहुत काल तक निरन्तर एकाग्रचित्त से विशेष कर स्तुति प्रार्थना करें । क्योंकि विषयवासनासे ठीक निवृत्ति होनेका अन्य कोई साधन नहीं है जैसे कि जलसे मिटने वाली प्यासको अन्य वस्तुसे निवृत्त करनेकी इच्छा वालेको फल प्राप्त होना कम सम्भव है । वैसे यहां भी अभ्यास वैराग्यादि साधनोंके द्वारा मनकी वृत्तियोंका निरोध करनेके समय परमात्माके शरणागत हुए विना उस से अधिक वा उसके तुल्य अन्य कोई गति नहीं है । क्योंकि परमात्मा सर्वोपरि संसारी भोगोंकी फसावट से अलग है विषयवासनाका लेशमात्र भी उससे सम्बन्ध नहीं रखता तथा उसके शरणमें पहुंचते ही अर्थात् स्वरूपावस्थित होते ही मनुष्यको ऐसा अद्भुत आनन्द मिलता है जिसके सामने संसारके सब विषयोंके भोग अत्यन्त फीके पड़ जाते हैं ॥४॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि-
र्विश्लोका यन्ति पथ्येव सूराः ।
शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥

अ०–अत्र वामिति वचनव्यत्ययेन बहुवचनस्थाने द्विवचनम् । हे मनआदीनीन्द्रियाणि वां युष्माकं कारणभूतं पूर्व्यं पूर्वैर्ब्रह्मादिभिरप्युपास्यं ब्रह्माहं युजे नमोभिश्चित्तप्रणिधानादिरूपैः प्रणामैर्निर्बीजसमाधिना च प्राप्नुमीहे तेन पथ्याइव सन्मार्गादनपेताः सुखेन गच्छन्तो मनुष्याइव निर्बाधाः सूराः सप्रकाशाः शुद्धा मालिन्यलेशेनापि रहिता मम श्लोकाः कीर्त्तयो वियन्ति विशेषेण दीर्घकालावधि चिरस्थायिन्यो भवन्तु । ये नरा योगाभ्यासादिशुभकर्मप्राबल्येन दिव्यानि धामानि स्थानानि ब्रह्मलोकादीन्यातस्थुः प्राप्तास्तेऽमृतस्य परमात्मनः पुत्राइव रक्षणीयाः सर्वे जीवन्मुक्ता मुक्ताः प्राप्तसर्वयोगसिद्धयो वा यथेच्छाचारिणो ममेमां वाचं शृण्वन्ति शृण्वन्तु ॥

भा०-यथा मनोनिरोधेनेन्द्रियाणि निरुध्यन्ते। बुद्धिसमाधानेन मन एकाग्रं जायत एवमात्मनि परमात्मविचारलग्ने बुद्ध्यादिकं सर्वं शान्तं तिष्ठति । तेन योगिना प्रतिज्ञातव्यं प्रार्थनीयं च योगिभिः सिद्धैर्जीवन्मुक्तैर्ज्ञानसीमानं प्राप्तैश्च ब्रह्मलोकादिवासिभिर्मम सङ्गोऽस्तु ते च मां मज्जन्तमुद्धरन्तु मम वाचं शृण्वन्तु । नच तेन कीर्त्तिरेषणीयाऽपितु पूर्वेषां योगिनां ज्ञानिनां च यथाऽद्यावधि चिरस्थायिनी निर्बाधाऽनिवार्या कीर्त्तिर्गच्छति तथाऽन्येषामपि धर्मभास्कराणां सूर्यस्येवानिवार्यः प्रकाशः प्रसरत्येव । तदर्थं परमेश्वरेण विशिष्टः सम्बन्धस्तच्छरणागतिस्तदुपासनमेव प्रधानम् । इमे च पञ्च मन्त्राः शुक्लयजुर्वेदस्यैकादशाध्यायारम्भे यथायथमुपलभ्यन्ते । पाठान्तरं च शाखान्तरवद्वेवानुमीयते । तत्राद्याऽनुष्टुप्, द्वितीया गायत्री, तृतीयाऽनुष्टुप्, चतुर्थी जगती, पञ्चमी च त्रिष्टुप् । ताभिश्चर्ग्भिर्योगाभ्यासप्रकारः प्रदर्शितः ॥ ५ ॥

भाषार्थः–हे मन और ज्ञानेन्द्रियो । तुम्हारी चेतनता के कारण (पूर्व्यं ब्रह्म नमोभिर्युंजे) पूर्व सृष्टिके आरम्भ वा कल्प

कल्पान्तरोंमें ब्रह्मादिकोंभी उपासना करने योग्य ब्रह्मको नमस्कार प्रणाम स्तुति प्रार्थनादि तथा निर्बीज समाधि द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा मैं करता हूं। उससे (पथ्येव सूराः श्लोका वियन्ति) उत्तम मार्गको न भूले वा उससे च्युत न हुए सुख पूर्वक अच्छे मार्गमें चलते हुए मनुष्योंके तुल्य प्रकाश रूप शुद्ध लेशमात्र भी मलिनतासे रहित मेरी कीर्ति वा यश दीर्घकाल तक विशेष कर चिरस्थायी हो। (ये) जो लोग योगाभ्यासादि शुभ कर्मों की प्रबलतासे (दिव्यानि धामान्यातस्थुः) ब्रह्मलोकादि उत्तम स्थानों वा उत्तम दशाओंको प्राप्त हुये वे (विश्वेऽमृतस्य पुत्राः शृण्वन्ति) नित्य मुक्त परमात्माको पुत्रके समान रक्षणीय सब जीवनमुक्त वा मुक्त वा योग सिद्धियोंको प्राप्त हुए यथेच्छाचारी पुरुष मेरी इस वाणीको सुनें॥

भा०—जैसे मनके निरोधसे इन्द्रिय स्वयमेव वशीभूत हो जाते हैं तथा बुद्धिके सावधान निश्चल होने पर मन भी एकाग्र शान्त हो जाता है। इसी प्रकार अन्तरात्मा जब परमात्म रूप अपने विचार वा स्तुति प्रार्थना उपासना में लगता है तब बुद्धि आदि सब शान्त होकर ठहर जाते हैं। इस कारण योगी को प्रतिज्ञा वा प्रार्थना करनी चाहिये कि योगी सिद्ध जीवन्मुक्त और ज्ञानकी सीमाको प्राप्त हुये ब्रह्मलोकादिमें निवास करने वाले पुरुषोंसे मेरा सङ्ग हो वे लोग डूबते हुए मुझको निकालें मेरी प्रार्थना वाणीका सुनें। उस पुरुषको अपनी कीर्ति वा प्रतिष्ठाकी इच्छा नहीं करनी चाहिये किन्तु पूर्वकालमें हो चुका अनेक योगी वा ज्ञानियोंकी जैसे अब तक चिरस्थायिनी निर्विघ्न अनिवार्य कीर्ति स्वयमेव चली जाती है वैसे धर्म सूर्य अन्य पुरुषोंका भी प्रकाश जगत्में स्वयमेव फैलता है उसको कोई रोक नहीं सकता। उस योगप्राप्तिके लिये परमेश्वर

से विशेष मेल तथा उसके शरणागत होना उसकी उपा-
सना करना ही मुख्य है। ये पांच मन्त्र यजुर्वेदके अध्याय ११
ग्यारहवेंके आरम्भमें ऐसे ही ज्यों के त्यों हैं। कुछ पाठान्तर
है वह शाखान्तरमें होनेके समान ही है। उनमें पहिले अनुष्टप्
दूसरी गायत्री तीसरी अनुष्टप्, चौथी जगती और पांचवी त्रि-
ष्टप्छन्दा है इन पाचों मन्त्रोंमें योगाभ्यासकी रीतिका मूल
दिखाया गया है ॥ ५ ॥

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्य-
त्राभियुज्यते। सोमो यत्रातिरि-
च्यते तत्र संजायते मनः ॥ ६ ॥

अ०—यत्र यस्मिन्योगाभ्यासे विषयवा-
सनां विहाय प्राणायामाभ्यासेन वाक्क-
र्मणा वेदाध्ययनेन च शारीरोऽग्निः परमा-
त्मास्वरूपः प्रदीपयितुमभितः प्रतिदिनं म-
थ्यते यत्र वायुरभियुज्यते प्राणवायुर्निरोधोऽ-
भ्यस्यते यत्र च सोमप्रधानं भोज्यमतिरि-
च्यते त्यज्यतेऽल्पीक्रियत उत्तमभोजनवस्त्र-
धारणादितो मन आकृष्यते तत्र मनो मननं
संजायते यद्वा यत्र यागेऽग्निररणिभ्यामभिम-
थ्यते, यत्र प्रवर्ग्यसम्भरणादौ पवित्रप्रेरितो
वायुरभियुज्यते यत्र दशापवित्रात्सोमरसोऽ-
तिरिच्यते निस्सरति तत्र सोमयागादौ प्रा-

र्थितदेवानुज्ञातस्य योगिनो मनः संजायते स्वर्गभोगहेतौ कर्मणि प्रवर्त्तते ।

भा०—बहुभिः साधनैर्ज्ञानाग्नेरुद्दीपनेन समूल प्राणायामाभ्यासेन भोगोत्कण्ठाह्रासेन च मनः शुद्धं समाहितं सम्पद्यते यद्वा देवप्रेरणया भोगहेतौ सोमयागादि कर्मणि योगिमनः संजायते ॥ ६ ॥

भापार्थः—(यत्राग्निरभिमथ्यते) जिस योगाभ्यासमें योगी पुरुष विषय भोगकी वासनाको त्यागके प्राणायामके अभ्यास से तथा वेदाध्यन रूप वाणीके कर्मसे शरीरस्थ परमात्मरूप अग्निको प्रदीप्त करनेके लिये मन्थन करता और प्राणके चढाने उतारनेसे तथा पढ़नेसे वायु बढ़ता है (यत्र वायुरभियुज्यते) जिस योगमें प्राण वायु केरोकनेका अभ्यास किया जाना है और (सोमो यत्रातिरिच्यते) सोमतत्त्व जिसमें प्रधान है ऐसे भोज्य पदार्थको जिसमें त्यागता कम करता अर्थात् उत्तम भोजन वस्त्रादिसे मनको हटाता है (तत्र संजायते मनः) उसी योगाभ्यास में मनन शक्ति हिताहित पहिचाननेकी योग्यता प्रगट हो जाती है। अथवा जिस यज्ञमें अरणियोंके द्वारा अग्नि का मन्थन होता, तथा प्रग्यं संभरणादि कर्ममें पवित्रसे प्रेरित वायु शब्द करता और जिस सोमयागमें दशा पवित्रसे सोमरस निकाला जाता है उस सोमयागादि कर्ममें प्रार्थित देवताकी प्रेरणासे योगीका मन स्वर्ग भोगार्थ लगता है ॥

भा०—बहुत साधनों द्वारा ज्ञानाग्निका उद्दीपन करके यमनियमादि सहित प्राणायामके अभ्यास और भोगकी तृष्णा के त्यागसे मन शुद्ध समाहित स्थिर हो जाता है अथवा देवता

कीप्ररणासे स्वर्गीय सुख भोगके हेतु सोमयागादि कर्ममें योगी का मन लग जाता है ॥ ६ ॥

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् । तत्र योनिं कृणवसे नहि ते पूर्वमक्षिपत् ॥ ७ ॥

षष्ठ्यर्थे तृतीया सवित्रा सवितुरन्तर्यामिणोदेवस्य प्रसवेन सानुग्रहप्रेरणेन यो योगी पूर्व्यं सनातनं ब्रह्म परमात्मानं जुषेत सेवेत । एवं यदि त्वं तस्मिन् ब्रह्मणि योनिं निष्ठां कृणवसे करोषि तदा ते तव पूर्वकालीनं कर्म नह्यक्षिपत्—नहि जन्ममरणप्रवाहे दुःखबहुले स्रोतसि त्वां प्रक्षेप्तुमर्हति ॥

भा०—योऽन्तर्यामिणः सवितुर्देवस्यानुग्रहेण प्रेरितो योगी भोगान्निर्विण्णो ज्ञानसाधनानि संचित्य शुद्धसमाहितैकाग्रेण मनसा ब्रह्मण एवोपासनं करोति तस्यैव शरणं गच्छति नासावपरिमितं मरणादिदुःखं पुनर्लभतइति ॥ ७ ॥

भाषार्थः-(सवित्रा प्रसवेन पूर्व्यं ब्रह्म जुषेत) अन्तर्यामी सविता देवकी कृपादृष्टि सहित प्रेरणासे जो योगी पुरुष सनातन ब्रह्म परमात्माका सेवन करे (तत्र योनिं कृणवसे) इस प्रकार यदि तू उस ब्रह्म में निष्ठा करता है तो

(तेपूर्व नच्छादिपत्) तेरा पूर्वकालमें किया संचित वासनारूप कर्म, दुःख जिस में बहुत है ऐसे जन्म मरणादि प्रवाह की प्रबल तरङ्गोमें तुझ को नहीं फेंक सकता अर्थात् तू संसार के पार होने योग्य हो सकता है ॥

भा०−जो अन्तर्यामी सविता देवके अनुग्रहसे प्रेरित हुआ योगी पुरुष भोग से उदासीन हुआ ज्ञान के साधनों को संचय करके शुद्ध समाधिस्थ एकाग्र मनसे ब्रह्मकी ही उपासना करता उसीके शरणमें रहता है। वह मरणादि सम्बन्धी अपरिमितदुःखको फिर नहीं प्राप्त करता वा फिर नही फसता ॥७॥

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य। ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥८॥

अ०−ब्रह्माणि निष्ठाकरणमुक्तं विशदी क्रियते−उरोग्रीवाशिरांसि त्रीण्युन्नतानि यस्य तत्समवक्रं शरीरं स्थाप्य संस्थाप्य हृदीन्द्रियाणि चक्षुरादिज्ञानेन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य सन्नियम्य तैरूपदर्शनादिकमकृत्वा ब्रह्म प्रणव उडुपइव तरणसाधनं तेन भयावहानि नानानिरययातनाभयान्यावहन्ति प्रापयन्ति तानि सर्वाणि स्रोतांसीन्द्रियगोलकानि प्रबलप्रवाहयुताः सरितइव विद्वान् प्रतरेत ॥

भा०-तज्जपस्तदर्थभावनप्रकारेण प्राणायामविधिरयम् । अभ्यासवैराग्यादिसाधनैरिन्द्रियवृत्तीर्वशीकृत्यैव शरीरं सममचलं च स्थापयितुं शक्यते । इन्द्रियवशीकारः शरीरस्थैर्ये कारणं सति च स्थैर्ये प्राणमनायम्य मनसि प्रणवं जपन् प्रणवार्थमीश्वरं च भावयन् पुरुषो दुःखसागरं तरीतुं शक्नोतीत्याशयः ॥

भाषार्थः-पूर्व मन्त्र में ब्रह्म निष्ठ होना कहा है उसी प्रकार दिखाते हैं—(त्रिरुन्नतं समं शरीरं स्थाप्य) छाती ग्रीवा और शिर ये तीनों जिस में ऊपर को उठे हों ऐसे सीधे शरीर को आसन पर स्थिर कर अर्थात् ऐसे शरीर से बैठकर तथा (हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य) चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों को मनकी रुकावट से रोककर अर्थात् इन्द्रियोंके साथ मनको न लगा के किन्तु मनके साथ इन्द्रियों को जोड़ के (भयावहानि सर्वाणि स्रोतांसि विद्वान् ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत) प्रबल वेग से बहने वाली नदियों के समान विषयों में बहने वाली इन्द्रियों को नाना प्रकार के नरक भोग की यातना का भय पहुंचाने वाले जानता हुआ ओ३म् का जप और उस के वाच्यार्थ ईश्वर के चिन्तन रूप नौका से शिर के सात इन्द्रिय छिद्र रूप स्रोतरूप नदियोंको तरे पार होवे ।

भा०—(तज्जपस्तदर्थभावनम्) उस वाचक प्रणव का जप वाणी से वार २ उच्चारण और उसके वाच्य ईश्वर का भावन वार २ चिन्तन इस रीति से प्राणायाम का विधान यहां कहा जानो । अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन की वृत्तिरूप इन्द्रिय शक्तियों को वशीभूत करके ही कोई शरीर

को निश्चल ठहरा सकता है अर्थात् इन्द्रियोंका वशीकार शरीर की स्थिरता का कारण है और शरीरके स्थिर होने पर प्राण की गति को रोककर मनमें प्रणव का जप करता और प्रणवार्थ ईश्वर का भावन करता हुआ दुःखसागर के पार हो सकता है ॥ ८ ॥

प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वा-
न्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥

अ०—स प्राणायामाभ्यासो योगो युक्ता नियता शान्ता चेष्टा देहक्रिया यस्य तादृग्भूत्वा मुहुर्मुहुर्निरोधेन प्राणान् प्रपीड्य प्रपीडनेन श्वासगमनागमनशान्तिं सम्पाद्य तथा-सति क्षीणे स्थिरदशामापन्ने प्राणे नासिकयैवोच्छ्वसीत न मुखेन । एवं दुष्टा अश्वा युक्ता अस्मिँस्तादृशं वाहनमिवैनं शरीररथं विद्वान् विजानन्नप्रमत्तो रश्मिरूपं मनो धारयेत । यत्र दुष्टाश्वा युक्तास्तद्रथवाहको यदि निमेषमात्रमपि प्रमाद्यति विस्मरति वा तदा ते दुष्टाश्वाः ससारथिस्वामिकं रथं सद्यएव गर्त्तादिषु नयन्ति पातयन्त्येव वा । तथैव

क्षणमपि विस्मृते दुष्टेन्द्रियवृत्तयः सद्यएव विषयगर्त्तेषु शरीररथं नेष्यन्त्येवं जानानएव न प्रमाद्यति ॥

भा०—प्राणचेष्टायाः स्थिरीभावे शान्ता अपीन्द्रियवृत्तयो विस्मृत आत्मनि मध्येमध्ये पुनरपि विषयेषु धावन्ति तस्मादिन्द्रियवृत्तीनां निरोधकाले चेतस्यैकाग्र्येऽपि दुष्टाश्वानिवेन्द्रियाणि जानीयाज्जितानीति न विस्मरेत् ॥९॥

भाषार्थः-(सयुक्तचेष्टः प्राणान् प्रपीड्य) वह प्राणायामका अभ्यास करने वाला योगी पुरुष शरीरकी चेष्टाको शान्तकर बार २ रोकने द्वारा प्राण के गमन आगमनको शान्तप्रवाह से चलनेवाला करके (क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत) ऐसा होने पर प्राण धीरे २ शान्त प्रवाह से चलने लगता है तब मुखको बन्द कर केवल नासिका से श्वास लेता जावे। सात द्वारोंमें मुख सब से बड़ा द्वार है इसी कारण इस में वाणी और रसना दो इन्द्रियां रहती हैं इसके बन्द रहने से दो इन्द्रियों को जीत सकता है इस लिये मुख को प्रथम बन्द करे परन्तु जब बल पूर्वक श्वास चलता है तब मुखका बन्द कर सकना कठिन है इस लिये प्राणशक्ति के निर्बल होने धीमे चलने वाली हो जाने पर ऐसा होना सुगम है (दुष्टाश्वयुक्तं वाहमिवैनं विद्वान्) दुष्ट घोड़े जिस में जुड़े हों ऐसे रथ [बग्घी अर्थात् दो वा चार घोड़े की गाढ़ी] के तुल्य दुष्ट इन्द्रिय घोड़ों से युक्त शरीर रथ को जानता हुआ (अप्रमत्तो मनो धारयेत) प्रमाद वा भूल न करके लगाम की रस्सी रूप मन को दृढ़ता से पकड़ें रहे। जिस गाड़ी में दुष्ट घोड़े लगे हों

हैं उस का हांकने वाला यदि क्षण भर भी उन की ओर से ध्यान हटा लेवे, वा ये घोड़े ऐसे दुष्ट हैं जो थोड़ा भी भूलते ही गाड़ी को ले भाग जायेंगे ऐसा न जानता रहे तो वे दुष्ट घोड़े रथके स्वामि सारथि तथा रथ तीनोंको कहीं गढ़े आदि में ले जाके गिराते वा वृक्षादि में लेजाके दे देते हैं। वैसेही कोई योगी वा ज्ञानी इन दुष्ट इन्द्रियोंकी स्वाभाविक दुष्टता को क्षण भर भी भूल जावे तो ये शीघ्र ही शरीररूप रथको विषयरूप गढ्ढोंमें ले जाते ऐसा जानता हुआ ही प्रमाद को छोड़ कर योगी मन को वशी भूत रख सकता है॥

भा०—प्राण की चेष्टा के स्थिर होने से इन्द्रियोंकी शक्ति के शान्त होने पर भी बीच२ आत्माके किञ्चित भी भूलजाने पर वे इन्द्रिय फिर २ विषयों की ओर भंड़ियाये पशुके समान भागते हैं। इस कारण इन्द्रियोंके रुकनेसे चित्तके एकाग्र होने पर भी दुष्ट घोड़ों के समान इन्द्रियों को जानता रहे किन्तु ये मेरे वशीभूत होगये ऐसा मानके भूल न जावे ॥९॥

समे शुचौ शर्करावह्निवालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहा-
निवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥ १०॥

अ०—समेऽनिम्नेऽनुन्नते शुद्धे दुर्गन्धादिरहिते शर्कराव‍ह्निवालुकाविवर्जिते—शर्करा-पाषाणादि चूर्णं वह्निसामीप्यं वालुकाधिक्यच यत्र तस्माद्भिन्ने, कलहतुमुलादिशब्दाधिक्य-

जलं प्राण्यागमननिवासस्थानमाश्रयो, ग्राम-घोषादि-मनुष्यादिवासस्थानं तैरपि विशेषतो वर्जिते तादृशे मनोऽनुकूले मनःस्थैर्यहेतुके यत्र दृश्यविषयसत्त्वाच्चक्षुषोः पीडनमाकर्षणं न सम्भवति तत्र गुहायां निवातस्थाने वा परमात्मनि चेतः प्रयोजयेत् ॥

भा०-एवंभूते सर्वथा चित्तेन्द्रियाकर्षक-हेतुवर्जित एव गुहादिस्थाने योगाभ्यासरीत्या परमात्मध्यानं कुर्वन् योगिजनः फलभावस्या-दिति सम्भवति । यथा सत्स्वेव सम्यक्साध-नेषु सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्ति तथैवा-त्रापि ज्ञेयम् ॥ १० ॥

भाषार्थः-(समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः) जहां अधिक ऊंची नीची पृथिवी ढालू न हो किन्तु समचौरस शुद्ध दुर्गन्धादि रहित हो, ककरीली वा पथरीला न हो, जहां अग्नि वा गर्मी अधिक न हो, तथा जहा वालू अधिक न हो तथा जहां लड़ाई झगड़े वा मेला बाजार ग्रामादि के मनुष्योका हल्ला गुल्ला न सुन पड़ता हो, जहां समीप वा सब ओर जलाशय न हो जिसमें जलार्थी प्राणि वा जलाशय निवासी जीव देखनेमें आवें ऐसे जङ्गल देशमें वा (मनोऽनुकूले नतु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्) मनकी स्थिरता के हेतु, जहां ग्रामादि सम्बन्धी कोई दर्शनीय वस्तु न हों जिन के दीख पड़नेसे चित्त उधरको खिंचे ऐसे अधिकवायुकी गति

से रहित वा गुहारूप किसी स्थानमें योग साधन द्वारा आत्मामें चित्तको लगावे किन्तु वहां भी विषय वासनाकी ओर मनको न जाने देवे ॥

भा०–जहां चित्त वा इन्द्रियोंको अपनी ओर खेंचने वाला कोई कारण न हो गुहादि स्थानमें योगाभ्यासकी रीतिसे परमात्माका ध्यान करता हुआ इष्ट सुख शान्तिरूप फलका भागी हो यह सम्भव है। अर्थात् जैसे सब साधनों के ठीक होने पर ही सब कार्योंकी सिद्धि होती है वैसे यहा भी जानो ॥१०॥

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्। एतानि रूपाणि पुरस्सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

अ०–योगे क्रियमाणे सिद्ध्यभिमुखे दीर्घकालमभ्यस्ते नीहारस्तुषारोऽर्कः-सूर्योऽनिलोवायुरनलोऽग्निः खद्योतादयश्च प्रसिद्धा एषां रूपाणीव ब्रह्मण्याविष्क्रियमाणे ध्यानयोगे लक्षितानि भान्ति ब्रह्म ज्ञानं ब्रह्मणः साक्षात्कारः सद्यो भवितेति योगसिद्धरूपब्रह्मज्ञानस्य पूर्वरूपाणि भवन्ति ॥

भा०–न चाल्पकालाभ्यासिनोऽजितेन्द्रियस्य प्रमत्तस्य प्रतिकूलदेशे वा युञ्जानस्य

कस्यापि योगसिद्धिसूचकचिन्हानि भवितुमर्हन्ति तस्माद्योगमभ्यस्यन्सर्वाङ्गपूर्त्तये दीर्घकालावधि निरन्तरं श्रद्धया तीव्राभ्यासेन यतेत ॥ ११ ॥

भावार्थः—(योगे) बहुत काल तक निरन्तर श्रद्धा पूर्वक योगाभ्यास करते २ जब योग सिद्ध होने का समय आता है तब (निहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्) तुषार धुंआं, सूर्य, आंधी, अग्नि, जुगनू, बिजुली, मणि और चन्द्रमा (एतानिब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि रूपाणि पुरःसराणि) इन सबके रूप समाधि में ब्रह्म परमात्माका ज्ञान होने के पूर्व रूप होते हैं। अर्थात् जब योग सिद्धि द्वारा ईश्वरका साक्षात्ज्ञान होने का समय निकट आता है तब ध्यान में तुषारादि के से रूप क्रम से दीखने लगते हैं ॥

भा०—थोड़े काल के योगाभ्यासी वा योगभ्रष्ट अजितेन्द्रिय प्रमादी निरुत्साही वा प्रतिकूल स्थान में योगाभ्यास करने वाले किसी अधकचरे योगीको योगसिद्धि के सूचक चिन्ह नहीं दीख सकते। इस कारण योगाभ्यास करता हुआ सब अङ्गों की पूर्त्ति के लिये बहुत काल तक श्रद्धा के साथ तीव्राभ्यास द्वारा निरन्तर प्रयत्न करता रहे ॥११॥

पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥१२॥

अ०-पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते स्वदेहस्थपञ्चतत्त्वानां सम्यगुत्कर्षे निकृष्टांशह्रासेन शुद्धांशे प्रबलत्वं याते उन्नते तदेवं पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते दिव्यगन्धादिविषयप्रवृत्तौ सत्यां तस्य योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य योगिनो न रोगो न जरा न मृत्युः ॥

भा०-यथा च सुवर्णादीनां यथायथा शोधनोपायाः क्रियन्ते तथातथा मलिनांशा असारा निवर्त्तन्ते शुद्धांशाश्च सारा वैशारद्यमाप्ताः प्रदीप्यन्ते । सारएव सर्वत्र शुद्धांश उच्यते । सारएव चिरस्थाय्यसारश्च सद्यो विनश्वरो भवत्येव । एवं योगाङ्गानुष्ठानप्राबल्येन बहुकालीनेन दृढेन शरीरेन्द्रियान्तःकरणानां मलिनांशाः शनैःशनैरपचीयन्ते शुद्धांशाश्च सारभूता उपचीयन्ते । तथा च सति सारभूता वज्रमण्यादयश्चिरन्तनस्थायिनोऽविनश्वराइव योगिशरीरं चिरन्तिष्ठति । असारमेव रोगा जरा चाक्रामति । यच्च दर्पणं यादृशं सारभूतं मालिन्यविहीनं च तस्मिन् तादृशमेव रूपवैशारद्यं सम्भवत्येवंशुद्धैः सारभूतैरेवेन्द्रियैर्विप्रकृष्टतरगन्धादिविषयाणां

सम्यग्ग्रहणं सम्भवति ॥ "ज्योतिष्मती स्पर्शवती तथा रसवती परा । गन्धवत्यपरा प्रोक्ता चतस्रस्तु प्रवृत्तयः ॥ आसां योगप्रवृत्तीनां यद्येकापि प्रवर्त्तते । प्रवृत्तयोगं तं प्राहुर्योगिनो योगचिन्तकाः ॥" योगभाष्ये तु पञ्च षड् वा प्रवृत्तय उक्तास्तासु चतस्रो विषयवत्योऽविषया चैकोक्ता ॥ १२ ॥

भाषार्थः-(पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते) अपने शरीरस्थ पृथिवी अप् तेज वायु और आकाशरूप पञ्चतत्त्वोंके निकृष्ट मलिनांश का नाश हो कर शुद्धांश की प्रबलता वा उन्नति होने से इस प्रकार (पञ्चात्मके योग गुणे प्रवृत्ते) दिव्यग न्धादि विषयों में प्रकृष्ट साक्षात् वृत्ति होने पर अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म व्यवहित और अति दूर के शब्दादि विषयोंका साक्षात् बोध होनेकी शक्ति प्रकट होने पर (तस्य योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य न रोगो न जरा न मृत्युः) पञ्चतत्त्वकी शुद्धि द्वारा योगाग्निरूप शरीर को प्राप्त हुये उस योगी पुरुषको न रोग न निर्बलता और न मृत्यु सताता है॥

भा०- जैसे सुवर्णादि धातुओं के शोधने का जैसा २ उपाय किया जाता है वैसे२ मलिन असार अंश उन सुवर्णादि के निकलते जाते और शुद्ध साराश निर्मलता को प्राप्त हुये अंश उज्ज्वल होते हैं । तथा सार ही सर्वत्र शुद्धांश कहाता और सार ही चिरस्थायी होता वा जो शुद्ध चिरस्थायी अंश है वही सार कहाता और असार अपने स्वभाव से ही शीघ्र नष्ट होता है वा जो शीघ्र नष्ट होने वाला है वह असार कहाता है । वैसे ही योग के तप आदि अङ्गों के अनुष्ठान की

प्रबलता से अर्थात् बहुत काल तक दृढ़ता के और निरन्तर श्रद्धा के साथ साङ्गोपाङ्ग योगाभ्यास करने से शरीर इन्द्रिया और अन्त:करणके मलिनांश शनैः शनैः दूर हो जाते तथा शुद्ध सारभूत अंश रह जाते हैं। ऐसा होने पर शुद्ध सार वस्तु की अधिक स्थिति रह सकने से ही बहुत काल ठहरने वाले सार भूत अविनाशी हीरा आदि के तुल्य योगी का शरीर सहस्रों वर्ष ठहरने वाला अविनाशी हो जाता है। असार मिलन वस्तु पर ही रोग और निर्बलतारूप जरावस्था अपना प्रभाव [दखल] जमाते हैं इसी से योगी के शरीर को रोगादि नहीं दबा पाते। जो दर्पण जैसा साररूप वा जैसा मलिनता रहित होता उस में वैसा ही शुद्धरूप दीखना सम्भव है। इसी प्रकार शुद्ध साराशरूप निर्मल इन्द्रियों से अत्यन्त दूरस्थ सूक्ष्म वा छिपे हुये गन्धादि विषयों का ग्रहण वा बोध योगी को हो सकता है "ज्योतिष्मती, रसती स्पर्शवती और गन्धवती ये चार योगप्रवृत्ति कही हैं। इन योगप्रवृत्तियों में से यदि किसी को एक भी सिद्ध हो जाय तो भी उस को योग में प्रविष्ट हुआ योगचिन्तक योगी लोग कहते हैं।„ये किसी अन्य ग्रन्थकार के दो श्लोक हैं इन में चार योग प्रवृत्ति मानी हैं परन्तु (विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्नामनसः स्थितिनिबन्धनी) इस योगसूत्र पर व्यासभाष्य में पाच विषयोंको पांच प्रवृत्ति मानी हैं। उन मे चार विषयवती और एक अविषया है॥१२॥

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च। गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥

अ०-लघुत्वमालस्याद्यभावआरोग्यं ज्वरादिजन्यदुःखाभावोऽलोलुपत्वं कर्मस्वचाञ्चल्यं शान्त्या धैर्येण च प्रवृत्तिर्वर्णस्याकृतेर्ब्रह्मचर्यशौचाद्यनुष्ठानाधिक्येन शुद्धिर्दीप्तिः स्वरसौष्ठवं सङ्कोचाद्यभावेन मानसशौचेन च स्वरस्य सम्यक् स्पष्टतया निस्सरणम्, शुद्धसात्त्विकाल्पाहारसेवनादेव शरीराच्छुभो गन्धो मूत्रपुरीषयोश्चाल्पत्वं जायतएव । इतीमां प्रथमां योगप्रवृत्तिं वदन्ति योगीश्वराः। प्रथमश्रेणिं प्रविष्टस्य योगिनो लिङ्गानीमानि पूर्वरूपाणि भवन्ति ॥

भा०-योगाङ्गसेवनरतपुरुषस्य लघुत्वादिलिङ्गानि जायमानानि तस्य प्रथमयोगश्रेणिप्रवेशं सूचयन्ति । प्रथमश्रेणिप्रवेशानन्तरमेव द्वितीयादिश्रेणिषु प्रवेशो युज्यते । एवं च द्वितीयादिभूमिकास्वेव पूर्वपद्योक्ता योगप्रवृत्तिः सम्भवति यत्र योगाग्निमयं शरीरं योगिना प्राप्यते । अत्र प्रथमपदोपादानादेवान्यप्रवृत्तेर्द्वितीयादित्वमायाति ॥ १३ ॥

भाषार्थः-(लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्) आलस्यादि को छोड़ कर शरीर का हलकापन, ज्वरादि रोगों का अभाव, कर्म करने में चञ्चलता का त्याग शान्ति और धीरज से प्रवृत्ति (वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च) ब्रह्मचर्य और शौचादि के अ-

धिक सेवन से आकृति की शुद्धि प्रसन्नता शान्तिभाव का दीखना, संकोचादि के अभाव और मनके शुद्ध होनेसे स्पष्टता से सम्यक् वाणी स्वर निकलना (गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति) शुद्ध सात्विक अल्प भोजन के सेवन से शरीर के छिद्रों द्वारा शुभ अच्छे गन्ध का निकलना और मूत्र पुरीषादि मलों का कम उत्पन्न होना तथा कम निकलना योगीश्वर लोग इस दशा को योग की पहिली प्रवृत्ति कहते वा योग की प्रथम श्रेणि में प्रवेश होने का लक्षण लघुत्वादि को कहते मानते हैं ॥

भा०—यमनियमादि योगाङ्गों के सेवन में रत पुरुष के शरीर में प्रकट हुए लघुत्वादि चिह्न उस के योग की प्रथम श्रेणि में हुए प्रवेश को जताते हैं और प्रथम श्रेणी में प्रवेश होने पश्चात् ही द्वितीयादि श्रेणि में प्रवेश हो सकता है। इस प्रकार द्वितीयादि भूमि वा दशा से ही पूर्व श्लोक में कही योग प्रवृत्ति हो सकती है कि जहां योगाग्नि स्वरूप शरीर को योगी प्राप्त कर सकता है । इस मन्त्र में प्रथम पद के कहनेसे ही अन्य पूर्वोक्त प्रवृत्ति द्वितीयादि श्रेणि में होनी सिद्ध है ॥ १३ ॥

यथैव विम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम्। तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥१४॥

अ०—यथैव विम्बं सुवर्णरजतादिमयं पात्रं शोधनाय मृदयोपलिप्तं यद्वा मालिन्यरूपमृत्तिकया युक्तं तत्सुधातं सुधौतं सम्यक् प्रक्षालितं तेजोमयं तेजःस्वरूपं शुद्धं सद्

भ्राजते शोभते यद्वाऽग्नौ धमायमानं मलिनं विम्बं यथा भ्राजते तद्वा तद्वत्-[इवार्थेऽत्र वा-शब्दः] इन्द्रियादिसङ्गरहित एको देही देह-स्वामी जीव आत्मतत्त्वं स्वीयमेववास्तविकं स्वरूपं परमात्मसद्भावं प्रकर्षेण सूक्ष्मया प्रज्ञया समीक्ष्य वीतशोको निवृत्तशोकः सन् कृतार्थः सिद्धसङ्कल्पो भवते ॥

भा०-स्वीय परमात्मरूपस्य साक्षात्कारेणास्य जीवस्य वह्न्यादि संयोगेन धातूनामिव यदा दुर्वासनादिजन्यं सर्वं मालिन्यमनायासेन सद्यएव निवर्त्तते तदैकोऽद्वैतं स्वात्मतत्त्वं ध्यानेन पश्यन् कृत कृत्यो जायते ॥१४॥

भावार्थः-(यथैव विम्बं मृदयोपलिप्तम्) जैसे सुवर्ण चांदी आदि धातुओं का पात्र शुद्ध करने के लिये मट्टी से मांजो लिप्त किया वा सामान्य मलिनतारूप मट्टी से युक्त हुआ (तत्तेजोमयं सुधातं भ्राजते) वह अच्छे प्रकार धोनेपर वा अग्नि से धर कर धौंपने से शुद्ध तेजोमय हुआ शोभित होता चिलकने लगता है (तद्वैको देही-आत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य वीतशोकः कृतार्थो भवते) उसी के तुल्य इन्द्रियादि के संगसे रहित अपने स्वरूप में अवस्थित अकेला जीवात्मा अपने वास्तविक शुद्ध परमात्मा स्वरूप को सूक्ष्म बुद्धि से अच्छे प्रकार समीक्षा करके शोक से रहित कृतार्थ हो जाता है ॥

भा०-अपने परमात्मा स्वरूप के साक्षात् ठीक जान लेने से दुर्वासनादि सम्बन्धी इस जीवकी सब मलिनता सब सुगमता से शीघ्र ही छूट जाती है तब एक अद्वैत अपने आत्म-तत्त्वको ध्यान से देखता हुआ कृतार्थ हो जाता है ॥१४॥

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्। अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥

अ०—जिज्ञासुर्जनो यदेह स्वदेहे दीपोपमेनात्मतत्त्वेन स्वस्य जीवस्वरूपेण युक्तः स्वरूपावस्थो विषयेन्द्रियादिसङ्गवर्जितो ब्रह्मतत्त्वं ब्रह्मणस्तत्त्वभावं प्रकर्षेण ध्यानगतः पश्येत्। तदाऽजमजन्मानं ध्रुवमचलं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धमसंसृष्टं देवं दीप्यमानं स्वीयमीश्वररूपं ज्ञात्वा सर्वदुःखबन्धनैर्मुच्यते ॥

भा०—जीवस्यान्तःकरणेऽनेकाः कुवासनारूपा दुःखबन्धहेतुका अनादिकालीना अहमेव मलिनः पापीत्यादयोऽज्ञानकारिता ग्रन्थयो विद्यन्ते तासामेव पाशत्वं ता एव च सर्वविधदुःखमूलचिन्ता शोकादीनामुत्पादिकास्तासामात्मदर्शनेन सत्यां निवृत्तौ शोकादयोऽपि निवर्त्तन्ते ॥ १५ ॥

भावार्थ—(यदेह दीपोपमेनात्मतत्वेन युक्तोब्रह्मतत्त्वम्) जब जिज्ञासु पुरुष अपने शरीरस्थ अन्तःकरण में दीपक के तुल्य स्वरूप में अवस्थित अपने जीव स्वरूप से ब्रह्मतत्त्व को

(प्रपश्येत्) ध्यानावस्थित हो अच्छे प्रकार देखे और ईश्वर को (अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्मुच्यते) अजन्मा अचल और सब पृथिव्यादि स्थूल सूक्ष्म तत्त्वों से अपरास्पृष्ट असंयुक्त प्रकाशमान अपनेको परमात्मस्वरूप जान के सब दुःख बन्धनों से छूट जाता है ॥

भा०-जीव के अन्तःकरण में अनादि काल से संचित दुःख बन्धन की कारण कुवासनारूप कि मैं ही मलिन तथा पापी हूं इत्यादि अज्ञान से हुई अनेक गांठें विद्यमान हैं वे ही फांसने वाली रस्सी के तुल्य बांधनेवाली तथा वे ही सब दुःखों का मूल चिन्ता शोकादि को उत्पन्न करने वाली हैं। स्वात्मज्ञान होने से उनकी निवृत्ति होने पर शोकादि भी छूट जाते हैं ॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। सएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥१६॥

अ०-एष पूर्वोक्तो देवो दीप्यमान आत्मा सर्वादिशः प्रदिशश्चानुगतो व्याप्तोऽन्तर्गर्भे मातुरुदरमध्ये पूर्वः पूर्वं जातः सर्गारम्भे ब्रह्मरूपेण सर्वं स्रष्टुं स्वयमपि प्रादुर्भवति। स एव जातः सएव च जनिष्यमाणो सर्गारम्भे सएव जीवरूपेण शरीरेषु प्रादुर्भूतः सएवचाग्रेऽपि प्रादुर्भविष्यति ततोऽन्यः स्वतन्त्रः कोऽपि जीवो नास्ति सर्वप्राणिषु प्रत्यङ् हृदि

जनानभिव्याप्य जीवरूपेण सर्वतोमुखस्तिष्ठति सर्वप्राणिगतानि मुखान्यस्य स सर्वतोमुखः ॥

भा०-सर्गारम्भात्पूर्वं परमात्मतो भिन्नं न किमप्यासीत्तदनन्तरं सएव सर्वत्र व्याप्तो विधातृरूपेण सर्गारम्भे प्रादुर्भूतः। सएव मातुरुदरे गर्भो भूत्वा जायते। सएव जीवरूपेण जगति जातो जनिष्यते च सर्वप्राणिनां प्रत्यगात्मरूपेण सर्वप्राणिषु तत्तदाकारेणावस्थितः ॥ १६ ॥

भावार्थ-(एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः) यह पूर्वोक्त प्रकाशस्वरूप आत्मा सब दिशा और प्रदेशाओं में व्याप्त (स च अन्तर्गर्भे पूर्वो ह जातः) वही सृष्टिके आरम्भ में ब्रह्मारूप से सब को रचने के लिये सब से पहिले प्रकट होता है (सएव जातः स जनिष्यमाणः) सृष्टि के आरम्भ में वही परमात्मा जीवरूप से शरीरोंमें प्रकट हुआ और वही आगे होगा उससे भिन्न स्वतन्त्र कोई जीवात्मा नहीं है। (प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः) वही सब प्राणियों में है ज्ञानशक्ति जिसकी ऐसा सब के हृदय में व्याप्त होकर जीवरूप से सब ओर सब को देखता है ॥

भा०-सृष्टि के आरम्भ से पहिले पहिले एक परमेश्वरसे भिन्न कुछ भी नहीं था तदनन्तर सर्गारम्भ में वही सर्वत्र व्याप्त विधाता रूप से प्रकट हुआ, वही माता के उदर में गर्भरूप बनके उत्पन्न होता, और वही संसार में जीवरूप से प्रकट हुआ और आगे होगा। सब प्राणियोंके बीच अन्त

रात्मरूप से विद्यमान उसी २ के आकार से उस २ में अव-स्थित है ॥

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश । य ओषधीषु यो वनस्पतिषुतस्मैदेवायनमोनमः ॥१७

अ०—योगाभ्यासवन्नमस्कारादि कमप्यात्मज्ञान साधनमिति दर्शयति-यो देव एकएव नाना रूपेणावस्थित ईश्वरोऽग्नौ योऽप्सु य ओषधीषु यो वनस्पति योऽश्वत्थादिषु तत्तद्रूपेणावस्थितः एवमुपलक्षणमात्रकथनेन यो विश्वं सर्वं भुवनं लोकमाविवेश तस्मै देवाय नमोनमोऽस्तु ॥

भा०—सर्वव्याप्तेश्वराता द्वैताय यो भक्त्यापुनःपुनर्नमस्करोति स्वेष्टसिद्धिं च ततो याचते तमेव स्तौति च स्वभावेनैव भक्तवत्सलस्तस्य कल्याणमवश्यं करोतीति भक्त्या नमस्कारादिना प्रसाद्यः। अहमात्मागुडाकेश सर्व भूताशयस्थितः । वसूनांपावकश्चास्मि स्रोतसामस्मिजाह्नवी । अश्वत्थःसर्ववृक्षाणामित्यादिना तत्तद्रूपत्वं दर्शितम् । नमः पदस्य द्विर्वचनमध्यायपूर्त्यर्थं चापि बोध्यम् ॥१७॥

भाषार्थः—(योऽग्नौ योऽप्सु यओषधी यो वनस्पतिषु) जो अग्नि में जो जलों में जो ओषधियों—गेहूं जौ आदि में और जो बट पीपल आदि बनस्पतियों में रहता इत्यादि प्रकार से (यो देवोविश्वं भुवनमाविवेश) जो देव ईश्वर सब लोक लोकान्तर संसार भर में प्रविष्ट हो रहा है (तस्मै देवाय नमोनमः) उस देव के लिये हम वार २ नमस्कार करते हैं वा करें अर्थात् अग्नि, जल, ओषधि और पीपल आदि वनस्पति इत्यादि सब में जो उसी २ के रूप से विद्यमान है उस को नमस्कार करें ॥

भा०—संसारस्थ अग्नि आदि पदार्थों में जो प्रबल वा अद्भुत शक्ति दीखती है वे सब जिस की सत्ता में वा नियम में बद्ध होकर अपना २ काम देते हैं वही ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। जो पुरुष सर्व व्याप्त ईश्वर को भक्तिके साथ बार बार नमस्कार करता और अपने इष्ट की सिद्धि उससे मांगता उसी की स्तुति करता है (स्वभाव से भक्तों का उद्धार करने वाला ईश्वर उस का कल्याण अवश्य करता है इस लिये भक्ति के साथ नमस्कारादि से उसको प्रसन्न करने का उद्योग अवश्य करना चाहिये भगवद्गीता अध्याय १० में कहा है कि हे अर्जुन ! मैं सब प्राणियों में एकात्मा रूप से विद्यमान् हूं। वसुओं में अग्नि रूप , नदियों में गंगा रूप और वृक्षों में पीपल रूप हूं इत्यादि कथन से परमेश्वर का उस २ रूप होना दिखाया। यहां नमः पद को अध्यायकी समाप्ति दिखाने के लिये द्वित्व किया है ॥ १७ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन भीमसेनशर्मणानिर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥२॥

अथ तृतीयाऽध्यायारम्भः ।



य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिः । य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १ ॥

अ०—मत्स्यबन्धनं जालमिवायं संसारः प्राणिबन्धहेतुत्वाज्जालं तस्य स्वामी जालवान्मायोपाधिरेकोऽद्वितीयो न तस्य स्वामित्वेऽन्यः कश्चित्सम्मिलितोऽस्ति । एवं य एक ईशनीभिः साधकतमाभिः स्वशक्तिभिरीशनशीलाभिर्वा—ईशत ईष्टे सर्वं स्ववशे स्थापयति । य एक एवोद्भवे उत्पत्तौ सम्भवे स्थितिकाले च सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिरित्युक्तानुवादो दार्ढ्यार्थः । (बहुलं छन्दसि । २ ४ । ७३) शपो लुगभावः । ये जनास्तस्यैकत्वंसजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यत्वमीशितृत्वं चैतद्द्वयं तत्त्वतो विदुस्तेऽमृता भवन्ति ॥

भा०—यथा मत्स्या जालान्निस्सर्त्तुं न शक्नुवन्त्येवं प्राणिनो दुःखाधिके जगति

मग्ना अपि प्रायेण संसारजालान्निस्सर्त्तुमशक्ता भवन्ति। यथा धीवरादिर्जालवान् जाले न बध्यते तेन मत्स्यानेव बध्नाति तथैवेश्वरो न बध्यते। यश्च कोऽपि जालस्वामिना मैत्रीं करोति न तं जाले बध्नाति सः। अपि तु बद्धमपि निस्सारयत्येवेति मत्वा जालस्वामिप्रसादाय दुःखान्मुमुक्षुणा विशिष्टोद्योगः कार्यः॥

भाषार्थः-(जालवान् य एक ईशनीभिरीशते) मछलियों को पकड़ने के लिये जैसा जाल बनाया जाता वैसे ही प्राणियों के बन्धन का हेतु होने से यह संसार जाल कहाता है उस संसार जाल का स्वामी जालवान् मायोपाधि ईश्वर कहाता, जो इतने बड़े अनन्त जालवाला अपनी अनन्त शक्तियों द्वारा सब को वश में रखता है (य एवैकउद्भवे सम्भवे च सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः) जो एक ही किसी अन्य की सहायता न लेकर उत्पत्ति और स्थिति काल में वा प्रलय करने के समय सब संसार को अपनी अनन्त शक्तियों से उत्पन्न आदि करता है उस की इच्छा से विरुद्ध तिलमात्र भी उत्पत्ति स्थिति प्रलय नहीं होता (यएतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो मनुष्य उसकी एकता अर्थात् सजातीय विजातीय और स्वगत भेद से रहित होने को और सब स्वामीपन को तत्त्वरूप से ठीक २ जानते हैं वे मुक्त हो जाते हैं॥

भा०-जैसे जाल में फसी मछलियां निकलना चाहती हुई भी निकल नही सकतीं फड़फड़ा २ कर उसी में मरजाती हैं। वैसे संसार के असंख्य दुःखों में फसे हुए भी प्राणी संसार

जाल से प्रायः निकल नहीं पाते । जैसे मछली पकड़ने वाले धीमर आदि जाल वाले जाल में स्वयं नहीं बंधते किन्तु उस जाल में मछलियों को ही पकडते बांधते हैं । वैसे ईश्वर भी संसार जाल में बद्ध नहीं होता और जो कोई इस जाल के स्वामी से मित्रता मेलमिलाप करता है उस को वह जाल में नहीं बांधता किन्तु स्वयं बंधे हुए को भी अपनी कृपा दृष्टि से अवश्य निकाल लेता है । ऐसा मान कर दुःख से छूटने की इच्छा वाले मनुष्य को उचित है कि संसाररूप जाल के स्वामी को प्रसन्न करने के लिये विशेष उद्योग वा प्रयत्न करे ॥१॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः । प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोपान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥

अ०–यो जनान्मनुष्यादीन्संसृज्य सम्यगुत्पाद्य प्रत्यङ् तदन्तःकरणेषु क्षेत्रज्ञरूपेण तिष्ठति तिष्ठन्व्याप्तएव स्थितिकाले विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि गोपा रक्षति । अन्तकाले प्रलयावसरे च यः संचुकोप संकुपितः सर्वं संहरति । एवं य इमाँल्लोकानीशनीभिः स्वीयमायाशक्तिभिरीशत ईष्टे हि यतो बहुदेवात्मकोऽपि स एको रुद्रः सर्गस्थि-

तिलयावसरेषु जालबद्धानां रोदयितैकएवास्ति तस्मादेव पूर्वजा ज्ञानिनो योगिनश्च द्वितीयाय न तस्थुर्नोपतस्थिरे ॥

भा०—सर्गस्थितिलयरूपकार्यत्रयस्य ब्रह्मादयस्त्रयः कर्त्तार उपाधिभेदेन भिन्ना अपि वास्तवेन रूपेणैकस्यैव ब्रह्मादीनि नामान्तराणि रूपान्तराणि च सन्ति । इह मुण्डो भवेह जटिलो भवेह शिखोभवेतिवदेकस्यैव नामानि रूपाणि च बहूनि भवन्ति । सम्प्रत्यपि यउत्पद्यन्ते ये लब्धायुष्काः सुखं जीवन्ति ये च म्रियन्ते तेषां सर्वेषां प्रात्यहिकसर्गस्थितिलयानामप्यतीतानागतयोरिवैकएव ब्रह्मविष्णुशिवात्मकं प्रधानं कारणमिति ये सम्यग्बुध्यन्ते ते च तमेवैकं सोपाधिकैर्बहुभिर्नामरूपैरप्युपासते । यतः पूर्वैरपि मुमुक्षुभिस्तस्य सर्वाधीशस्यैकस्यैवोपासनमभिमतमतोऽस्माभिरपि तथैवानुष्ठेयम् ॥ २ ॥

भाषार्थ.—(यो जनान् संसृज्यप्रत्यङ् तिष्ठति) जो मनुष्यों को सम्यक् उत्पन्न करके उन के भीतर अन्तःकरणोंमें क्षेत्रज्ञ नाम रूप से ठहरा और व्याप्त रहता हुआ ही जगत् के स्थिति काल में (विश्वा भुवनानि गोपाः) सब लोकों की रक्षा करता है (अन्तकाले संचुकोप) प्रलय का समय आते

ही जो सम्यक् कुपित हुआ सब का संहार कर देता है। इस प्रकार जो (इमांल्लोकानीशनीभिरीशते) इन सब लोकों को अपनी अनन्त माया शक्तियों से उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता हुआ स्वाधीन रखता है (हि—एको रुद्रः) जिस कारण संसार जाल में फसे हुए सब प्राणियों को रुलाने वाला रुद्र अनेक ब्रह्मा विष्णु आदि देवता नाम रूप होता हुआ भी एक ही है इसी कारण पूर्वंज ज्ञानी योगी लोगों ने भी (द्वितीयाय न तस्थुः) अन्य किसी द्वितीय की भक्ति उपासना नहीं की किन्तु उस एक की ही उपासना सब करते आये हैं।

भा०—सृष्टि स्थिति और प्रलयरूप तीन कार्यों के करने वाले ब्रह्मा विष्णु रुद्र नामक तीन कर्त्ता उपाधि भेद से नाम रूपमात्र भिन्न होने पर भी वास्तविक स्वरूपसे वे सब एक के ही ब्रह्मादि तीन नाम तथा रूप हैं। जैसे कोई कहे कि हे देवदत्त तू यहां मुण्ड हो यहां जटिल हो और यहां केवल शिखाधारी होजा। इसी प्रकार एक के ही बहुत नाम तथा रूप हो जाते हैं। वर्त्तमान समय में भी जो उत्पन्न होते जो उत्तम दशा में जीवित रहते और जो मरतेजाते हैं उन सबके नित्य होने वाले उत्पत्ति स्थिति प्रलयों का भी भूत भविष्यत् काल के तुल्य ब्रह्माविष्णुशिवात्मक एक ही प्रधान कारण है, जो लोग ऐसा ठीक २ जानते हैं वे देवता रूप सोपाधिक अनेक नाम रूपों से भी उसी एक की उपासना करते हैं। क्योंकि पूर्वज मुमुक्षु लोगों ने भी उसी एक सर्वाधीश की उपासना स्वीकार की है इस से हम को भी वैसा ही करना उचित है ॥ २॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

संबाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ३ ॥

अ०–तस्यै वा द्वितीयस्य रुद्रस्य विराडात्मनाऽवस्थितिं तत्स्रष्टृत्वं च दर्शयति–सर्वत्र व्याप्त्या सर्वशक्तिमत्तया च विश्वतः सर्वप्राणिगतानि चक्षूंषि दर्शनशक्तयो यस्य विश्वतः सर्वप्राणिगतं मुखं भक्षणभाषणरूपा शक्तिरस्य विश्वतः सर्वप्राणिनां बाहवः स्तम्भनशक्तयो यस्यैव विश्वतः सर्वप्राणिनां पादा देशान्तरप्राप्तिशक्तयो यस्य स तादृशः सर्वशक्तिर्देवो द्योतनशील एकएवेश्वरो द्यावाभूमी अग्नीषोमीयं दैवासुरं सप्रकाशमप्रकाशं वेत्यादिरूपं द्विविधं द्यावापृथिव्यात्मकं सर्गं जनयन् प्रादुर्भावयन् बाहुभ्यां बलद्वयेन दैवबलेनासुरबलेन च [बाहुर्वै बलमिति ब्राह्मणम्] यद्वा धर्माधर्माभ्यां सन्धमति संगमयति पतत्रैः पतनशीलैः संसरणस्वभावैः परिवृत्तिधर्मकैः पञ्चभूतैश्च विश्वा भूतानि संगमयति संयोजयति। धमतिर्गतिकर्मा निघण्टौ २। १४। पठितः स चात्र ण्यर्थः ॥

भा०—विश्वतश्चक्षुरित्यादिकथनेन तस्य सर्वशक्तिमत्त्वमत्र प्रतिपादितम् । एकएव चिदात्मा सर्वमनुष्यादिप्राणिष्ववस्थितोऽन्तः-करणेषु स्वचैतन्येन दर्शनादिशक्तिं जनयति तस्मात् सा विश्वतश्चक्षुरित्यादिरूपेण कथ्यते। यथा कश्चिद्बाहुद्वयेन जलादिकं क्षोभयेदेवं यो भोग्यभोक्तृरूपस्त्रीपुरुषादिविविधशक्तिद्व-येन सर्वमविरतमविश्रान्तं निरन्तरं भ्रामयति यन्त्रारूढमिव । तस्माद्यस्य स्वाभाविक बले-नैव सर्वो लोकलोकान्तरोऽनन्तोऽपि सर्गोऽवि-रामेण भ्राम्यति स कियच्छक्तिरिति ध्येयम् । शुक्लयजुषि १७ । १९ मन्त्रोऽयं द्रष्टव्यः ॥ ३ ॥

भावार्थः—उसी एक अद्वैत रुद्र की विराट्रूप से स्थिति और विराट् रूप की रचना करने वाला भी वही है यह दिखाते हैं । सर्वत्र व्याप्त और सर्वशक्तिमान् होने से (विश्व तश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः) स्थिति समयमें सब प्राणियोंमें विद्य-मान् चक्षुइन्द्रिय हैं जिस के अर्थात् सब को सब ओर आगे पीछे भीतर बाहर देखने की जिसमें शक्ति है तथा सब प्राणि शरीरों में भोजन और भाषण करने की शक्ति जिसको है वा प्रलय के समय सब ओर से जिस में सबके निगल जाने की शक्ति है (विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्) स्थिति काल में सब प्राणियों के शरीरगत हाथ पगों से जो सर्वत्र काम कर रहा है अथवा अनन्त ब्रह्माण्ड को थांभने पकड़ने धारण

करने की जिस को शक्ति तथा दूर से भी दूर देशान्तर में पहुंचने की शक्ति भी जिसमें सब ओर से विद्यमान है। वह ऐसा सर्वशक्तिमान् (एको देवो द्यावाभूमी जनयन्) एक ही देव ईश्वर अग्नि—सोम, देव—असुर, वा प्रकाश अप्रकाश इत्यादि रूप दो २ प्रकार की आकाश पृथिव्यन्तर्गत सृष्टिको प्रकट करता हुआ (बाहुभ्यां सधमति) दैव बल और आसुर-बल इस दो प्रकार के बल से अथवा धर्म अधर्मरूप दो भुजाओं से सब प्राणियों को संयुक्त करता और (पतत्रैश्चम्) चलायमान स्वभाव वाले परिवर्त्तन शील पांच भूतो से सब चराचर को संयुक्त करता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में बाहु शब्द का अर्थ बल लिया गया है [दोही बल मुख्य हैं धन बल स्वतन्त्र नहीं किन्तु पराधीन है जिसको बुद्धिबल वा बाहु बल दोनों होते वा एक होता उसी के पास धन भी आजाता है]॥

भा०—(विश्वतश्चक्षुः) इत्यादि कथन से उस ईश्वर का सर्वशक्तिमान् सब में व्याप्त होना सिद्ध किया है। एक ही चेतनात्मा सब मनुष्यादि प्राणियों में अवस्थित रहता हुआ सब के अन्तःकरणों में अपनी चेतनता से दर्शनादि शक्ति प्रकट करता है इसी कारण वह (विश्वतश्चक्षुः) इत्यादि नाम वाला हुआ है। जैसे कोई मनुष्य दोनों बाहु में बल पूर्वक जल आदि को क्षोभित करे वैसे जो भोग्य भोक्तारूप स्त्री पुरुषादि दो २ शक्तियों से सब संसारको बीचमें विश्राम न लेकर वा विराम न करके निरन्तर चक्र पर चढ़े हुए के तुल्य भ्रमा रहा है। इस कारण जिस के स्वाभाविक बल से ही सब लोकलोकान्तर अनन्त संसार भी निरन्तर भ्रमण कर रहा है कभी कोई ब्रह्मचक्र के वेग से निकल पाता है वह कैसी या कितनी शक्ति वाला हो सकता है इस पर ध्यान

देना चाहिये । शुक्ल यजुर्वेद १७ । १९ में यह वेद का मन्त्र है ज्यों का त्यों यहां लिखा गया जानो ॥ ३ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥

अ० मैत्रज्ञरूपेणावस्थितस्य तस्यैव सृष्टिप्रक्रियां प्रतिपादयन्मन्त्रद्रष्टर्षिः स्वाभिप्रेतं प्रार्थयते–यइन्द्रादिदेवानां प्रभव उत्पत्तिहेतुरुद्भवः विभूतियोगहेतुश्च विश्वस्य सर्वस्याधिपोऽधिष्ठाता पालयिता वा रुद्रः सर्वेषां शास्ता रोदयिता महर्षिः सर्वज्ञो निरतिशयज्ञानो यश्च पूर्वं सर्गारम्भे हिरण्यगर्भं हितकरं रमणीयामत्युज्वलं ज्ञानं गर्भेऽन्तर्मध्ये यस्य तादृशं स्वस्यैवरूपं ब्रह्माणं पूर्वं सर्गादौ जनयामास सर्वं स्रष्टुं प्रकटीकरोति स ईश्वरः शुभया बुद्ध्या नोऽस्मान् संयुनक्तु येन निःश्रेयसभाजो वयं स्यामेति प्रार्थनां कुर्मः ॥

भा० यथा पुस्तकादीनां निर्माणं प्रकाशनमन्येषु प्रवृत्तिश्चैकेनैव क्रियते तथाऽस्य

भौतिकस्य दैविकस्य च सर्वस्य जगत उत्पत्तिं प्रवृत्तिं च यएकएव ब्रह्मनामरूपेण स्वयमाविर्भूय करोति तस्मादेव स सर्वाध्यक्षः सर्वशास्ता सर्वज्ञश्चास्ति। यथा जलेनैव महती पिपासा निवर्त्तते नान्येन साधारणोपायेनैवं सर्वाधीशसर्वज्ञप्रार्थनोपासनध्यानादिनैव प्राणिनो महद्दुःखं निवर्त्तते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र में कहे क्षेत्रज्ञ रूपसे सब प्राणियोंमें विद्यमान उसी परमेश्वर की सृष्टि प्रक्रिया दिखाते हुए मन्त्र द्रष्टा ऋषि अपने अभीष्ट फल प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं—(योदेवानां प्रभवश्चोद्भवश्च) जो इन्द्रादि देवताओंकी उत्पत्ति का और उन २ के महत्त्व नाम अष्टसिद्धि प्राप्ति का हेतु अर्थात् जो देवोंके देवत्वका भी कारण है (विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः) जो सब जगत् का अधिष्ठाता वा रक्षक सर्वोपरि शासन कर्त्ता और महान् ऋषि नाम ज्ञानी सर्वज्ञ ज्ञानस्वरूप है। (पूर्वं हिरण्यगर्भं जनयामास) पहिले सृष्टि के आरम्भ में अर्थात् प्रत्येक कल्प में सब के हितकारी रमणीक अत्युज्ज्वल ज्ञान है भीतर जिसके ऐसे अपने ही स्वरूप को को सब सृष्टि रचने के लिये ब्रह्मा रूप से प्रकट किया और करता है (स नः शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु) वह ईश्वर हम लोगों को अच्छी कल्याणकारिणी बुद्धि से संयुक्त करे जिस से हम निःश्रेयस सुख के भागी हों ऐसी प्रार्थना करते हैं॥

भा०—जैसे पुस्तकादि का बनाना और प्रवृत्तिनाम सर्वत्र प्रकाशित करना ये दोनों काम जहां एक ही करता वहीं उन पुस्तकादि पर उस का पूर्ण अधिकार होता वैसे भूतनाम

सत्त्व और देवनाम शक्तिरूप सूक्ष्म तत्त्वों सम्बन्धी सब जगत् की उत्पत्ति और उन २ कार्यों में प्रवृत्ति जो एक ही ब्रह्मा नाम रूप से स्वयं प्रकट होकर करता है इसी से वह सर्वाध्यक्ष सब का शासक और सर्वज्ञ है। जैसे जलसे ही बढ़ी हुई प्यास शान्त वा निवृत्त होती है किन्तु अन्य किसी साधारण उपाय से नहीं इसी प्रकार सर्वज्ञ की प्रार्थना उपासना और ध्यानादि से ही जन्म मरणादि सम्बन्धी महान् दुःख निवृत्त हो सकता है ॥ ४ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ ५ ॥

अ०—पुनरपि तस्य स्वरूपं दर्शयन्मन्त्रद्वयेनाभीष्टप्रार्थनां दर्शयति—हे गिरिशन्त ! गिरौ पर्वते मेघे वा विद्यमानः शं सुखं तनोति भक्तमुपासकं सुखयति तत्सम्बुद्धौ, मिथ्याभाषिणां रोदयितः हे रुद्र ! ते तव या शिवा सुखरूपा सुखप्रदा शान्ताऽविद्यातत्कार्यविनिर्मुक्ता सच्चिदानन्दब्रह्मस्वरूपाऽघोराऽभयप्रदा सर्वभयाऽपहारिणी चन्द्रबिम्बवदानन्दप्रदा पापेतरस्य पुण्यस्यैव प्रकाशिनी स्मरणमात्रेणाघनाशिनी पुण्यमेवोपासकाय ददाति न

कदापि पापफलमिति तनूस्तव स्वरूपं तया शन्तमयाऽतिशयेन पूर्णानन्दस्वरूपया तनुवा तन्वा स्वरूपेण नोस्मानभिचाकशीहि—अभिपश्य कृपादृष्टिं विधेहि ॥ ५ ॥

यामिषुं गिरिशन्त ! हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र ! तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥६॥

अ०- हे गिरिशन्त रुद्र ! यामिषुं पापफलस्य दुःखस्य हेतुमनिष्टफलप्रदानशक्तिं पापिष्ठस्तवे क्षेप्तुं हस्ते बिभर्षि धारयसि । हे गिरित्र ! गिरितो धर्मज्ञानप्रकाशावरकात्तमोरूपपापात्त्रातः ! तामिषुं शिवां शान्तां कुरु शान्त्या दुःखभोगं समाप्य त्वदुपासनेन वयं सुखिनः स्याम । जगज्जङ्गमं पुरुष पुरुषत्वप्रधानं विशिष्टधर्म्यकार्यसाधनक्षमं कमपि मा हिंसीर्मा वधीः ॥

भा०—स्तुतिपुरस्सरा प्रार्थनाऽत्र प्रधानास्ति । रुद्रनामरूपात्मकेश्वरस्तुतिप्रार्थनाभ्यां ये पुण्यरूपाः संस्कारा हृद्याविर्भवन्ति ते पूर्वसञ्चिता दुःखहेतवः कुसंस्कारास्तिरो-

भूयन्ते शिथिलीक्रियन्ते । दुःखरूपाः कुसंस्काराः ईश्वराधीनाः पापसंस्काराश्च शस्त्राणीव दुःखप्रदाः । यस्य कल्याणमयं मङ्गलमयं सर्वभयापहं पुण्योदयरूपं च निरतिशयं स्वरूपं तदाश्रयेणैव सूर्योदये महत्तमइव सर्वः कुवासनारूपो हार्दः पापपुञ्जः सद्यश्छिद्यते तस्यापि निरतिशयशुद्धज्ञानप्रकाशस्य परेशस्य तस्य ज्ञानतमश्छेदने शस्त्रत्वं बोध्यम् । यथायथा सर्वाधीशस्य प्रार्थनां स्तुतिमुपासनां च चेतसा सम्यक् करोति तथा तथा हृदि शुद्धो ज्ञानप्रकाशो वृद्धिंगतो भवति। तस्मात्परमकल्याणसाधनमेतदिति ज्ञात्वा सुज्ञेनानुष्ठेयम् । शुक्लयजुष्यपीमौ मन्त्रौ द्रष्टव्यौ ॥

अ० १६ । मं० २ । ३ ॥ ५ । ६ ॥

भावार्थः—फिर भी उन्हीं रुद्र भगवान् का स्वरूप वर्णन करते हुये दो मन्त्रोंसे प्रार्थना दिखाते हैं हे (गिरिशन्त ते या शिवाऽघोराऽपापकाशिनी तनूः) गिरि नाम पर्वत वा मेघ में विद्यमान रहते हुये उपासक मनुष्यों के लिये शं नाम कल्याण को विस्तृत करने वाले वा सत्यभाषणशील भक्त उपासक को सुखी रखने वाले तथा मिथ्यावादी वा वेदविरोधियों को रुलाने वाले रुद्र नामरूप ईश्वर ! तुम्हारा जो सुखरूप सुखदाता शान्त अविद्या तथा माया जन्य कार्य के दोषोंसे पृथक् सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप निर्भयता पहुंचाने वा सब प्रकारके भय

को हरने वाला तथा चन्द्रमा के तुल्य शान्ति सुख देने वाला और पाप से सर्वथा रहित निर्दोष पुण्य का ही प्रकाशक उपासक के लिये पुण्य को ही देने वाला किन्तु कभी पाप में न गिराने वाला स्मरणमात्र करने से पाप नाशक शरीर रूप है (तया शन्तमया तन्वा) उस अत्यन्त कल्याणमय पूर्ण आनन्द स्वरूप सुखदायी अपने शरीर से (नोऽभिचाकशीहि) हम लोगों को देखिये हम पर कृपादृष्टि कीजिये ॥

भावार्थः—हे (गिरिशन्त !) पर्वत वा मेघ में रहते हुये भक्तको सुखी रखने वाले रुद्रनामरूप ईश्वर ! (यामिषुमस्तवे हस्ते बिभर्षि) जिस दुःख के हेतु अनिष्टपाप के फल देनेकी शक्तिरूप शस्त्रको पापियों पर फेंकने के लिये हाथमें धारण करते हो। हे (गिरित्र) धर्म और ज्ञानके प्रकाशको ढापने वाले बद्दल के समान अज्ञानान्धकाररूप पाप से बचानेवाले ईश्वर ! (ता शिवां कुरु) उस शस्त्रशक्ति को शान्त सुखमय करो जिससे हमलोग शान्ति के साथ दुःखभोग को समाप्तकर आपकी उपासना से सुखी हों और (जगत्पुरुषं मा हिंसीः) धर्मानुकूल विशेष कार्य साधने में समर्थ पुरुषार्थी सचेत मनुष्यादि किसी को भी मत मारो मत बधो ॥

भा०—स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करना इन दोनों मन्त्रों में प्रधान है। रुद्र नाम रूपवाले ईश्वर की स्तुति प्रार्थना के द्वारा जो पुण्य पवित्र स्वरूप सस्कार हृदय में प्रकट होते हैं उनसे पूर्वकाल के संचित दुःखों के हेतु कुसस्कार पाप तिरोहोते दब जाते वा शिथिल हो जाते हैं। अच्छे बुरे दोनो प्रकार के संस्काररूप पाप पुण्य फल भोगने में ईश्वराधीन रहते उनमें पाप के संस्कार शस्त्रों के समान हृदय में दुःखोत्पादक होते हैं। जिस का कल्याणकारी मङ्गलमय सब भयों से बचाने वाला निरतिशय पुण्य सूर्य कासा उदय ही स्वरूप है उस रुद्र भगवान् का शरण लेने से

ही सूर्योदय होते ही महान् अन्धकारके तुल्य मन्त्र कुवासना रूप हृदय का पाप समूह शीघ्र ही नष्ट छिन्न भिन्न हो जाता है ईश्वर में रहने वाला अत्यन्त शुद्ध वह ज्ञान प्रकाश भी अज्ञानरूप शत्रुके छेदन के लिये प्रबल शस्त्र मानना चाहिये सर्वाधीश की स्तुति प्रार्थना उपासना को जैसा २ सम्यक् मन लगा के मनुष्य करता है वैसा २ उन के हृदय में शुद्ध ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है। इसी लिये स्तुति आदि परमकल्याण का साधन है यह जान कर विचार शील को अवश्य ऐसा ही करना उचित है। शुक्ल यजुर्वेद अ० १६ में दूसरे तीसरे ये दोनों मन्त्र हैं ॥ ५। ६ ॥

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥ ७ ॥

अ०-पुनस्तस्यैव कारणात्मनाऽवस्थितिं प्रदर्शयन् ज्ञानान्मोक्षमाह-ततो जीवात्मयुक्ता ज्जगतः परं कारणरूपेण पृथग्भूतं यद्वा ततस्माज्जगदात्मनो विराजः परं बृहन्तमत्यन्तं वृद्धं विधातुरपेक्षयापि वृद्धेः पराकाष्ठां प्राप्तं सर्वभूतेषु सर्वचराचरेषु गूढं तत्तद्रूपेणैव यथानिकायं यस्य वस्तुनो यादृश्याकृतिस्तस्यां तद्रूपेणैव व्याप्तमन्तरवस्थितं विश्वस्य सर्व-

स्यैकमेव परिवेष्टितारं तमेकमेव सर्वं ब्रह्माण्डं स्वस्यान्तः कृत्वा स्वात्मना सर्वं सर्वतो व्याप्याऽवस्थितमीशं यथावस्थितं ज्ञात्वाऽमृता जन्ममरणरहिता भवन्ति ॥

भा० ज्ञानी जनो देवमनुष्यादिसर्वप्राण्यपेक्षया मायापेक्षया च शुद्धममलं क्वाप्यसंसक्तं व्याप्तमनन्तं सर्वान्तर्यान्तर्यामिणमखिलब्रह्माण्डं स्वान्तः कृत्वाऽवस्थितं स्वीयमेव वास्तवेनेदृशं परमात्मरूपं ज्ञात्वा मुक्तो भवितुमर्हति नान्यथा ॥ ७ ॥

भाषार्थः-फिर उसी ईश्वर की कारणरूप से अवस्थिति दिखाते हुए ज्ञान से मोक्ष होना कहते हैं-(ततः परं यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढं विश्वैकं परिवेष्टितारम्) उस जीव सहित जगत् से वा जगत् रूप विराट् से परे वस्तु की जैसी आकृति वा जिस का जैसा शरीर है उनमें उसी २ के रूप से व्याप्त सबके भीतर स्थित सब को सब ओर से आच्छादित करने अर्थात् अपने भीतर रखने वाले (बृहन्तं तमीशं ज्ञात्वा) ब्रह्मादि देवों सेभी अत्यन्त बड़े बड़प्पन की पराकाष्ठा (हद्द) को प्राप्त हुए उस ईश्वर ज्यों का त्यों जान कर (अमृता भवन्ति) जन्म मरणरहित मुक्त हो जाते हैं ॥

भा०—देव मनुष्यादि प्राणी और जडात्मक मायाकी अपेक्षा अति शुद्ध निर्मल, किसी में लिप्त होने वाले व्याप्त अनन्त सबके अन्तःकरण में विद्यमान् ,सब ब्रह्माण्डको अपने भीतर करके ठहरे हुए , व स्तव में अपने आप को ही ऐसे उक्त

परमात्मरूप जानके प्राणी मनुष्य मुक्त हो सकता है अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥

अ०-इदानीमुक्तमर्थं दृढयितुं मन्त्रदृगनुभवं दर्शयित्वाऽद्वैतात्मतत्त्वज्ञानादेव मोक्षो नान्यथेति दर्शयति अहं मन्त्रद्रष्टा-एतं प्रत्यगात्मरूपेण सर्वान्तःस्थं महान्तं सर्वात्मकत्वादादित्यवर्णं प्रकाशमयं तमसोऽविद्याऽज्ञानात्सर्वथैव परस्तादतिदूरमन्धकाररहित्यस्य काष्ठां प्राप्तं [आदित्यप्रकाशाद्व्यवच्छेदार्थमिदं मेघादिनाऽऽच्छाद्यते सूर्यप्रकाशो न तथाऽयम्] पुरुषं पूर्णं वेद जानामि । तमेव पुरुषं विदित्वा मृत्युमत्येति-अतिक्रामति मृत्युस्तं नाक्रामति मृत्युं जयतीत्यर्थः । अयनाय निरन्तरं शान्त्या स्थित्यर्थं परमपदावाप्तये । ब्रह्मचक्रेण यद्भ्रमणं तत्समाप्त्यैनान्यः कश्चिदपि पन्था मार्गो लोके वेदे वा विद्यते ॥

भा०—शुक्लयजुषि—अ० ३१ । १८ अयं मन्त्रः । अयमाशयः—यदा कदापि येन केनापि यत्रकुत्रापि यादृशं यावच्च शान्त्या स्थैर्यं सुखं चावाप्यते तदा तत्र तेन प्रत्यगात्माभिमुखतया शारीरात्मज्ञानेनैव च कालत्रयेऽपि तावत्सुखंस्थैर्यं चावाप्तुं शक्यते । यत्र यादृशगुणाधिक्यं ततएव तल्लाभसम्भवात् । निरंतिशयमहत्त्वादिविशिष्टशारीरसर्वज्ञेश्वरविज्ञानेनैवागाधसंसारार्णवोर्मिषु निमज्जद्भिः पारगमनायोद्योगः कार्यः शान्त्या सुखेन स्थित्यै नास्त्यन्यः कश्चिदुपायइति ॥ ८ ॥

भावार्थः—अब पूर्वोक्त अर्थ को दृढ़ करने के लिये मन्त्रद्रष्टा ऋषि का अनुभव दिखाके अद्वैत अपने से अभिन्न आत्मतत्वके ज्ञानसे मोक्ष होता है अन्यथा नहीं यह दिखाते हैं (अहमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्पुरुषं वेद) में मन्त्रद्रष्टा इस जीवात्मरूपसे सब के भीतर शरीर में स्थित सर्वात्मक होने से महान् सूर्य के तुल्य प्रकाशमय तमोगुण रूप अविद्यान्धकार से सर्वथा अत्यन्त दूर [अन्धकार के अभाव की जहां सीमा हो जाती है उस दशामें स्थित तम से परे कहनेसे जताया है कि मेघादि से सूर्य का आच्छादन होता किन्तु उस को आच्छादित करने वाला कोई नहीं है] पूर्ण व्यापक पुरुष परमेश्वरको जानता हूं (तमेव विदित्वा मृत्युमत्येति) उसी पुरुष को जान कर जीव मृत्यु को जीत सकता है (नान्यः

नान्यः पन्था विद्यते) शान्ति के साथ निरुपद्रव ठहरने का स्थान प्राप्त करने के लिये अर्थात् परम पद प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है अर्थात् ब्रह्मचक्रके साथ जो अनादि काल से जीव भ्रमण कर रहा है उस की समाप्ति अन्य किसी द्वारा नहीं होती केवल एक ईश्वर को जानके ही अत्यन्त शान्ति और सुख में स्थिर हो सकता है ॥

भा०—शुक्ल यजुर्वेद अ० ३१-में यह अठारहवां मन्त्र है। इस मन्त्रका अभिप्राय यह है कि जब कभी जहां कहीं जिस किसी को जैसा कुछ स्थिर शान्ति वा स्थिर निरुपद्रव निरन्तर सुख मिला है मिलेगा वा मिल सकता है तब तहां तिस को तैसा सुख वा शान्ति स्वशरीर में स्थित ईश्वर की ओर तत्परतासे वा उस जीवको नित्य शुद्ध सच्चिदानन्द मुक्त स्वभाव जाननेसे ही मिला है मिलेगा वा मिल सकता है। जिस वस्तुमें जैसा गुण वा शक्ति विशेष कर होती उस की प्राप्ति वहीं से हो सकती है प्यास तीनों कालमें जल से ही दूर हो सकती है अग्नि से कभी नहीं। इस लिये जिस में असीम महत्त्व वा सत्वप्रकाशरूप सुखादि गुण हैं उस शान्तिमय शरीर ईश्वर के विशेष ज्ञान से ही अगाध संसारसागर की भयङ्कर तरङ्गों में डूबते हुओं को पार होने के लिये उद्योग करना चाहिये शान्ति वा सुख से स्थिति होने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ ८ ॥

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चि-द्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ॥ वृक्षइव स्तब्धो दिवि

तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ९ ॥

अ०—कुतस्तमेव विदित्वामृत्युमत्येतीत्युच्यते यस्माच्छारीरात्पुरुषात्परं प्रकृष्टमपरं सांसारिकं पारमार्थिकं वा तद्भिन्नं किमपि नास्ति न यस्मादणीयः सूक्ष्मतरं न च ज्यायो महत्तरं किमप्यस्ति । अर्थात्परोऽपरोऽणीयान् ज्यायांश्चसर्वात्मकः सएवास्ति। यश्चैकएवदिवि प्रकाशानन्दमयेस्वेमहिम्नि स्वस्वरूपे वा वृक्षइव स्तब्धोऽचलस्तिष्ठति तेन पुरुषेण पूर्णेन सर्वमिदं जगत्पूर्णं व्याप्तमर्थाद्यथा सूत्रैरोतप्रोतैः पूर्णः पटस्तस्मिन्सूत्रादन्यत्किमपि नास्ति तथाऽनेन शारीरेणात्मना पूर्णं चराचरं जगदतोऽस्मिन्नात्मेतरत् किमपि नास्ति । यस्मादीदृशस्तस्मात्तमेवाद्वितीयं पुरुषं ज्ञात्वा मृत्युमत्येतीति पूर्वपद्येन सम्बन्धो योज्यः ।

भा०—यत्रोत्कर्षादेः काष्ठाप्राप्तिः सएवेश्वरस्तादृशं, स्वात्मानं जानन्नेव नित्यःशुद्धो मुक्तोऽनादिरनन्तोऽचलः कूटस्थः सर्वशक्तिः सर्वनियन्ता सर्वज्ञः सनातनः स्वयमपि सम्भवतिनस्त्वैव नित्यमुक्तस्यत्रोधो मोक्षहेतुः ॥९॥

भाषार्थः—जिस कारण से उसी को जानकर मोक्ष हो सकता है सो कहते है—(यस्मात्परमपरं किञ्चिन्नास्ति) जिस शरीर आत्मा से अधिक उत्तम संसार वा परमार्थ का अन्य कोई पदार्थ नहीं है (यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्) जिस से अधिक सूक्ष्म वा जिस से अधिक बड़ा और कुछ नहीं जो सब सूक्ष्मों से सूक्ष्म बड़ों से बड़ा है अर्थात् पर अपर अति छोटा और अति बड़ा वही सर्वात्मक सर्वमय एक शरीरस्थ आत्मा है (एको दिवि वृक्षइव स्तब्धस्तिष्ठति) जो एक ही अपने प्रकाशानन्दमय स्वरूप वा महिमा में सदा वृक्षके तुल्य अचल हुआ ठहरा हुआ है (तेन पुरुषेण सर्वमिदं पूर्णम्) उस सब में पूर्ण व्याप्त पुरुष से यह सब जगत् पूर्ण है अर्थात् सब में ईश्वर भरपूर हो रहा है अर्थात् जैसे ताना वानारूप सूत्रों से ही वस्त्र भरा पूरा है उसमें सूत भिन्न कुछ नहीं वैसे इस शरीरस्थ आत्मासे चराचर जगत् पूर्ण है इस में आत्मासे भिन्न कुछ नहीं है इसी कारण उस एक अद्वैत ईश्वर को जान कर ज्ञानी मुक्त हो सकता है यह पूर्व मन्त्र के साथ इस का सम्बन्ध जानो ।

भा०—जिस में उत्तमतादि की असीमता (हद्द) है वही ईश्वर होता वा ठहरता है अपने आत्म स्वरूप को वैसा जानता हुआ ही ज्ञानी पुरुष ही नित्य शुद्ध मुक्त, अनादि, अनन्त अचल कूटस्थ सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता सर्वज्ञ और सनातन स्वयं भी हो सकता है उसी नित्य मुक्त आत्मा का जानना ही मोक्ष का हेतु है ॥ ९ ॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति १॥०॥

अ०—तत इदंपदवाच्याज्जगत उत्तरं सूक्ष्मं जगत उपादानं प्रधानं ततोऽप्यतिशयेन यदुत्तरं तदुत्तरतरं तच्चारूपं रूपादिगुणरहित मनामयमाध्यात्मिकाद्यखिलतापविहीनं ये जनाःस्वात्मन उत्तरतरमरूपं तापत्रयरहितं वास्तवं स्वरूपमेतद्विदुर्जानन्ति ते अमृता मुक्ताभवन्ति । अथेतरेयेतथा न जानन्ति ते दुःखमेवापियन्ति लभन्ते ॥

भा०—लोकेऽपि यःस्वस्य सुखित्वकारणानि सम्यग् वस्तुतो वेत्ति स तथैव कुर्वाणः सुखं लभते यश्च नवेत्तिस दुःखमेवाप्नोति॥ १० ॥

भाषार्थः-(ततो यदुत्तरतरम्) उस पूर्वोक्त इदंपदवाच्य स्थूल जगत् से उत्तर नाम परे जगत् का सूक्ष्म कारण प्रकृति वा माया है उस से भी जो उत्तर नाम परे है (तदरूपमनामयम्) वह रूपादि गुणों और सब आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दुःख वा उपद्रवों से रहित है (य एतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो लोग त्रिविध दुःखों से रहित अरूप सब से परे अपने वास्तविक इस स्वरूप को जानते हैं वे अमृत नाम मुक्त हो जाते (अथेतरेदुःखमेवापि यन्ति) और जो लोग वैसा नहीं जानते वे दुःख को ही प्राप्त होते दुःख-सागर में ही डूबते हैं ॥

भा०—लोक में भी जो अपने सुखी होने के कारण को सम्यक् रीति से वास्तव में जानता है वह वैसा ही करता

हुआ सुखको प्राप्त कर सकता है और जो सुख प्राप्तिके मार्ग को जैसा वा जितना नहीं जानता वह वैसा वा उतना ही दुःख पाता है ॥ १० ॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः । सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥ ११ ॥

अ०—संप्रति तस्यैव सर्वात्मकत्वं दर्शयति सर्वेषु प्राण्यप्राणिषु मुखशिरोग्रीवासंबद्धभाषणदर्शनेक्षणनिगरणजीवनशक्तयोऽस्य तादृशः सर्वप्राणिनां गुहायां बुद्धौ शेते व्याप्तस्तिष्ठति, श्रीयशोवीर्यज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि भगपदवाच्यानि यत्र निरतिशयानि विद्यन्ते तादृशो भगवान् सर्वव्यापी शिवः सुखस्वरूपस्तस्मादेव सर्वगतोऽल्पगते भगवत्त्वसुखमयत्वयोरसम्भवात् ॥

भा०—सर्वप्राण्यन्तःकरणेषु चिदाभासरूपेणावस्थितो योऽखिलशरीरगतमुखशिरोग्रीवाद्यङ्गैर्भाषणपर्यालोचननिगरणादिकर्म करोति कारयति वा सएव भगवान्सर्वव्यापी शिवोऽस्ति तस्यैव बोधोऽमृतप्राप्तेर्हेतुरिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ११ ॥

भाषार्थः-अब उसी परमेश्वर का सर्वरूप होना दिखाते हैं-(सर्वाननशिरोग्रीवः) सब प्राणियों में मुख शिर और ग्रीवा सम्बन्धिनी बोलने देखने शोधने और निगलने की शक्ति जिस की है अर्थात् एक ही आत्मा सब प्राणियों में विद्यमान रहता हुआ अन्तःकरण तथा इन्द्रियोंको चेतनवत् करके बोलना देखना शोधना तथा निगलनादि कर्म करता वा कराता है (सर्वभूतगुहाशयः) सब प्राणियोंकी हृदयस्थ बुद्धिमें जो व्याप्त रहता ठहरा हुआ है (स भगवान् सर्वव्यापी) शोभा, कीर्त्ति, पराक्रम, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य भगपदवाच्य ये सब जिस समष्टिरूप में असीम विद्यमान हैं ऐसा वह भगवान् जिस कारण सब में व्याप्त प्रविष्ट होनेके स्वभाव वाला है (तस्मात्सर्वगतः शिवः) इस से वह शिव नाम सुखस्वरूप और सब में प्राप्त है ॥

भा०-सब प्राणियों के अन्तःकरण में चिदाभास रूप से विद्यमान जो एक परमेश्वर सब प्रकार के शरीर में विद्यमान मुख शिर और कण्ठादि अङ्गोसे बोलना शोधना और निगलनादि कर्म को करता वा कराता है वही सर्व व्यापी भगवान् शिव है वह प्रदीपादि प्रकाशवत् साक्षी अलिप्त होनेसे निर्दोष है। उस ऐसे भगवान् का ही जानना मुक्तिपाने का हेतु हो सकता है इस प्रकार इस मन्त्र को भी पूर्व विषय की पुष्टि के लिये जानो ॥ ११ ॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्त्तकः । सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ १२ ॥

अ०-यतो महानतएव प्रभुर्जगत उत्पत्तिस्थितिलयान्यथाकालमनायासेन कर्त्तुं समर्थः सत्त्वस्यान्तः करणस्य प्रवर्त्तकःप्रचारकःसुष्ठु सम्यङ्निर्मलां पापदोषरहितामिमां परमपदप्राप्तिं मुक्तिमीशानस्तद्दया अध्यक्षोऽव्ययो ज्योतिर्मयः परिशुद्धो विज्ञानप्रकाशस्वरूपश्च ॥

भा०—नहि कोऽपि स्वयमसिद्धः परान् साधयतीति न्यायाद्दरिद्रोऽर्थिने धनं दातुमशक्तएव भवति तथैव यदि तस्मिन्महत्त्वादिकं न स्यान्मुक्तेःस्वामित्वादिकं च न स्यात्तदा कथमन्यस्मै दातुं शक्तः स्यात् ॥ १२ ॥

भाषार्थः-(महान् प्रभुर्वै पुरुषः) जो महान् होता वह प्रभु समर्थ भी होता वा हो सकता है महान् होने से ही जगत् के उत्पत्ति स्थिति लयों को अपने २ समयमें सहज से कर सकता इसी से वह पुरुष है (एष सत्वस्य प्रवर्त्तकः) यह सत्वगुणरूप अन्तःकरण नाम बुद्धि का मुख्य प्रवर्त्तक वा प्रचारक है (अव्ययो ज्योतिः सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानः) सम्यक् पाप दोष रहित अच्छी निर्मल परमपद प्राप्ति रूप मुक्ति का स्वामी मुक्ति का देने वाला सदा अविनाशी ज्योतिः स्वरूप विज्ञान प्रकाशमय है ।

भा०—स्वयं असिद्ध अन्यों को सिद्ध नहीं बना सकता। इसी के अनुसार धनहीन से किसी अर्थी को धन नहीं मिल सकता। वैसे उस ईश्वर में महत्व वा मुक्ति का स्वामिपन न होता तो अन्य को महत्स्वरूप मुक्ति कैसे दे सके ? ॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदामनीशो मनसाऽभिक्लृप्तो
यएतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१३॥

अ०—अन्तरात्मा बुद्धौ व्याप्तोऽङ्गुष्ठमात्रस्थानोपलभ्यत्वादङ्गुष्ठमात्रः सदा सर्वावस्थासु जनानां जननमरणधर्मिणां हृदये सन्निविष्टो लिङ्गशरीरेण कृतसम्बन्धः। मनीशो ज्ञानस्येशानोहृदा हृदयस्थेन मनसा मननेनाभिक्लृप्तो ज्ञातुं शक्तः पुरुषः सर्वत्र पूर्णः पुरिशरीरे शयनाद्वा पुरुषः। य एतदात्मतत्त्वमित्थमेव विदुस्तेऽमृता भवन्ति महाभयानकान्मरणदुःखान्मुच्यन्ते ॥

भा०--ये स्वस्यान्तः प्रविष्टं मननस्यापि प्रवर्त्तकं सर्वसुखाप्तिहेतुं तं बुध्यन्ते तएकाग्रचेतसा तदन्वेषणपरास्तं विदित्वा सर्वमनिष्टं जहतीष्टं च लभन्ते। अर्थात्—पञ्चकोशावियोगेन तत्तन्मय इवस्थितः। शुद्धात्मानीलवस्त्रादियोगेनस्फटिकोयथा। इत्यात्मबोधे-

ईश्वरोजीवकलयाप्रविष्टोभगवानित्यादिप्रमाणैश्च सर्वत्र व्याप्तएकएवेश्वरो जीवरूपेण सर्वशरीरेष्वप्यङ्गुष्ठमात्रपरिमितहृदये विद्यते तस्य स्वदेहे विज्ञानं सुलभं तमेव जानाना मुक्ता भवन्ति ।

भावार्थः-(सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽन्तरात्माऽङ्गुष्ठमात्रः) जीवन की सब दशाओं में जो सब प्राणियों के हृदय में व्याप्त रहता अर्थात् मरण पश्चात् लिङ्ग शरीर के साथ रहता, सब का अन्तर्यामी प्रेरक चिदाभास रूप से बुद्धि में अवस्थित हृदय के अंगुष्ठ परिमित स्थान में ध्यान योग द्वारा योगियों को प्राप्त होने वाला (मनीशो हृदा मनसाभिक्लृप्तः पुरुषः) मननशक्ति का भी स्वामी हृदयस्थ मननशक्ति से जानने योग्य पुरुष नाम सब में पूर्ण वा पुर नाम शरीर में रहने वाला ईश्वर है (य एतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो लोग इस आत्मतत्वरूप ईश्वर को ऐसा ही जानते हैं वे महाभयानक मरणादि के दुःखसे बच जाते हैं ॥

भा०-जो लोग अपने भीतर व्याप्त ज्ञान के भी प्रवर्त्तक सब सुखों की प्राप्ति के कारण ईश्वर को जानते हैं वे एकाग्र चित्त से उस के खोजने में तत्पर हुए उस को साक्षात् जान कर सब अनिष्ट को छोड़ते और इष्ट को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात्-"अन्नमय-स्थूलदेह, प्राणमय-इन्द्रिय शक्ति मनोमय विज्ञान-बुद्धि बोधमय, आनन्द मय इन पांच कोशों में उन २ के रूप से ही विद्यमान है वह नील वस्त्रादिके संयोग से स्फटिक के तुल्य उस २ रूप वाला दीखता हुआ भी वास्तव में शुद्ध है यह बात आत्मबोध में लिखी है तथा जीवांश रूप से सब शरीरों में भगवान् विद्यमान है इत्यादि

प्रमाणों के अनुसार जो ब्रह्म में व्याप्त एक ही परमेश्वर है वही जीव रूप से सब शरीरों में भी अङ्गुष्ठ मात्र परिमाण वाले हृदय स्थान में विद्यमान है उसका अपने शरीर में ज्ञान होना सुलभ है, उसी को सम्यक् जानने वाले मुक्त हो सकते हैं ॥ १३ ॥

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१४॥ पुरुषएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ १५ ॥

भा०—सहस्रमसंख्यानि शीर्षाणि यस्यैवमग्रेऽपि योज्यम् । अखिलप्राणिगतशिरोऽक्षिपाद्यङ्गैरालोचनदर्शनगमनादीनि यः करोति साक्षीसन् कारयति वा स विश्वतः सर्वतोऽन्तर्बहिश्च भूमिं पार्थिवशरीरादिकं भुवनं वा वृत्वा व्याप्य दशाङ्गुलिनिर्देश्यमनन्तं दशदिक्स्थं सर्वं ब्रह्माण्डमतिक्रम्य ततो बहिरप्यतिष्ठद् व्याप्तस्तिष्ठति । यद्वा दशाङ्गुलपरिमितं नाभेरुपरि हृदयं तत्रात्यन्तमाधिक्येन तिष्ठति ।

यदिदं सर्वं प्रत्यक्षेणोपलभ्यमानं स्थावरजङ्गमं यद्भूतमतीतं विनष्टं यच्च भव्यमनागतं तत् सर्वं पुरुष एवास्ति, उक्तमन्त्रेण तस्य सर्वात्मकत्वेऽपि प्रपञ्चदोषग्रस्तः स नास्त्यपि तु जले तरङ्गादीनामसत्त्ववत्परमात्मनि जगत्कल्पनमप्यसदेव किन्तु पुरुषएवाविद्याहेतोर्जगद्रूपेणावभासते वस्तुतः सर्वं खल्विदं ब्रह्मैवास्ति उत सर्वात्मकः सन्नपि सोऽमृतत्वस्य मुक्तेरीशानः स्वामी स्वयं सदा मुक्त एव यच्चान्नेनातिरोहत्यन्नभक्षणेन जीवति तस्य बद्धस्यापि सर्वजङ्गमस्येशानः स्वाम्यस्तीति ॥

भा०—एकएवाहिभूतात्मा भूतेभूतेव्यवस्थितः।
एकधाबहुधाचैव दृश्यतेजलचन्द्रवत् ॥

इत्यादिप्रमाणानुसारेण सर्वप्राणिष्वेकएव चेतनात्मा प्रदीपादिवदसक्तएव साक्षिरूपेणावस्थितः स्वयमकर्त्तापि सर्वं कर्म कारयति स विराडात्माऽसंख्यशिरआद्यवयववान् स्वेन सच्चिदानन्दरूपेण सर्वंब्रह्माण्डमावृत्यातिरिक्तोऽप्यस्ति त्रैकालिकं सर्वं च जगत्परमात्मरूपमेवास्ति स्वयं च सदामुक्तएवास्ति भक्तान्बन्धनान्मोचयति । सर्वस्य प्राणिवर्गस्या-

ध्यक्षोऽपि सएवास्तीति ज्ञानं मोक्षसाधनं विज्ञेयम् ॥ १४ । १५ ॥

भाषार्थः—(सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः) मनुष्यादि के शरीरोंमें विद्यमान शिर आंख और पग आदि अङ्गों से शोचना देखना और गमनादि कर्मों को जो करता वा साक्षी रूप से कराता है ऐसा सब में बाहर भीतर व्योमवत् भरपूर व्याप्त पुरुष है (स विश्वतो भूमिं वृत्वा दशाङ्गुलमत्यतिष्ठत्) वह सब ओर से पार्थिव शरीरादि वा भुवन रूप जगत् को आवरण कर अर्थात् सब को अपने भीतर रख और स्वयं सब के सब ओर तथा भीतर बाहर व्याप्त हो के दश अंगुलियों के संकेत से जताने योग्य दशों दिशा में स्थित सब ब्रह्माण्ड का उल्लङ्घन कर सब के बाहर भीतर ठहरा है वा नाभि से ऊपर दशाङ्गुल परिमित हृदय में अधिकता से अत्यन्त ठहरा हुआ है (इदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं पुरुषएव) वर्त्तमान समय में जो प्रत्यक्ष दीखता भूत नाम जो पूर्व हो चुका नष्ट हो गया वा जो भविष्यत्में होने वाला है तीनों काल का यह सब जगत् पुरुष रूप ही है अर्थात् पूर्व मन्त्र से उस का सर्वात्मक होना सिद्ध होने पर भी संसार के दोष से लिप्त वह नहीं किन्तु जल में तरङ्गादि की कल्पना के तुल्य परमात्मामें जगत्की कल्पना भी असत् ही है क्योंकि अज्ञान से ईश्वर ही जगत् रूप से प्रतीत होता है वास्तव में सब ब्रह्म ही है (यदन्नेनातिरोहत्युतामृतत्वस्येशानः) जो अन्न खाकर जीवित रहता वा अन्न से शरीरधारी होता उस वद्ध जीवमात्र का और अमृत नाम मुक्तों की दशा का भी वह सर्वात्मक होकर भी स्वामी है अर्थात् स्वयं सदा मुक्त ही है अर्थात् मुक्ति और बन्धन सब उसी के आधीन है ।

भा० -एक ही चेतनात्मा मनुष्य पशु पक्षी आदि भिन्न २ जातियों में अनेक रूप से विद्यमान है प्रदीपादि से देखे बिना केवल चक्षु से जैसे अच्छा बुरा कुछ काम नहीं होता परन्तु दीपकादि को पाप पुण्य नहीं लगता वैसे शरीरेन्द्रियादि आत्मा के बिना कुछ नहीं कर सकते आत्मा स्वयं अकर्त्ता होने पर भी सब कर्म कराता है वह विराट् रूप ईश्वर मनुष्यादि के असंख्य शिर आदि अवयवों वाला होकर भी अपने वास्तविक सच्चिदानन्द रूप से सब ब्रह्माण्ड को घेर के सब में और सब से पृथक् भी विद्यमान है। तीनों काल में होने वाला सब जगत् परमेश्वर ही है अर्थात् संसार बुद्धि असत् और आत्म बुद्धि सत् है। वह आत्मा सदा ही मुक्त है तथा भक्त उपासकों को बन्धन कष्ट से छुड़ाने वाला है और सब प्राणियों का अधिष्ठाता भी वही है ऐसा सम्यक् ज्ञान होना मोक्ष का साधन है ॥ १४ । १५ ॥

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१६॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ १७ ॥

अ०—सर्वतः पाणयः पादाश्च यस्येति सर्वदिक्षु सर्वचरयोनिषु च हस्तपादाद्यवयव-

युक्तः। लोके प्राणिवर्गे सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वेन्द्रियगुणैरध्यवसायसंकल्पश्रवणादिशक्तिवदाभासोऽस्य तम्। सर्वेन्द्रियसङ्गवर्जितं सर्वस्य प्रभुं सर्वचरस्य स्थावरस्य च नियामकमीशानं सर्वचराचरस्य स्वामिनं सर्वस्य दृश्यस्य शरणं बृहदाश्रयभूतं तदात्मतत्त्वमस्तीति॥

भावार्थः—प्राणिदेहेषु हस्तपादचक्षुराद्यङ्गानि वस्तुतो जडानि तेषु प्राणिशरीरेषु यएकएवात्मा मठाकाशवदवस्थितो यश्च हस्तादिना चक्षुरादिना च चेतनकार्यं सर्वं कारयति यश्च सर्वेन्द्रियसङ्गरहितोऽपि श्रोतृत्वादिरूपेण प्रतीयते स एव परमेश्वरः सर्वाध्यक्षस्तस्यैव ज्ञानं मोक्षसाधनमस्ति॥१६।१७॥

भाषार्थः—(सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्) सब ओर से सब योनियों में पकड़ने और चलने की हाथ पांव सम्बन्धिनी शक्ति जिस में हैं और सब ओर चक्षु शिर तथा मुख सम्बन्धिनी देखने सोचने भक्षण करने की शक्ति जिस में है (सर्वतः श्रुतिमत्) और सर्वत्र सब प्राणियों में सुनने की शक्ति वाला तथा (लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति) जो लोक नाम प्राणिशरीरोंमें सब का आवरण करके ब्रह्माण्डभर में ठहरा हुआ है (सर्वेन्द्रियगुणाभासम्) मन आदि अन्तःकरण तथा श्रोत्रादि बहिःकरणरूप सब इन्द्रियोंके विषयरूप

संकल्प श्रवणादि गुणों के साथ तत्तद्रूप से प्रतीत होने वाले (सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) सब इन्द्रियों के सङ्ग दोषों से रहित (सर्वस्य प्रभुमीशानम्) सब जड़ चेतन सूर्य चन्द्रादि जगत् का नियामक और स्वामी (सर्वस्य शरणं बृहत्) और सब का बड़ा आश्रय आधार रूप धारक पालक उत्पादक नाशक एक ही ईश्वर है ॥

भा०—प्राणियों के शरीर में हाथ पांव आदि अङ्ग जड़ हैं उन प्राणि शरीरों में जो एक ही आत्मा घर वा घटादि में आकाश के तुल्य विद्यमान है और जो आत्मा हाथ आदि वा चक्षु आदि से होने वाले चेतन सम्बन्धी सब काम करा रहा है, और जो सब इन्द्रिय तथा विषयों के गुण दोषों से रहित है तथापि जो श्रोता आदि रूप जान पड़ता है वही आत्मा सब का स्वामी परमेश्वर है अर्थात् जो जीव नाना जाता है वही ईश्वर है उसीका ज्ञान मोक्षका साधन है १६।१७

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः । वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥

अ०—नव द्वाराणि सप्त शिरसि द्वे चाधस्तादस्मिंस्तादृशे शरीरनगरे स्थावरस्य चरस्य च सर्वस्य दृश्यस्य वशी सर्वं वशे यस्य सः हन्ति सर्वमविद्यात्मकं स हंसो जीवरूपेणावस्थितः परमात्मा देहस्थो बहिर्विषयानुपादातुं लेलायतेऽभिलषतीव ॥

भा०-पुरुषशरीरे नवद्वाराणि स्त्रीशरीरे चैकं प्रस्तावार्थमधिकं तादृशनगरात्मकशरीरेऽवस्थितोऽपि विषयानुपादातुं लेलायमानत्वेन बद्धइव प्रतीयमानोऽपि स्वस्य वास्तविकस्वरूपेण सर्वं चराचरं स्ववशे स्थापयति तस्यैव शरीरे जीवरूपेणावस्थितस्य भगवतः सर्वानर्थहानाय ज्ञानं सम्पादनीयम् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(स्थावरस्य चरस्य च सर्वस्य लोकस्य वशी) दृष्टि गोचर होने वाले स्थावर जङ्गम सब संसारी पदार्थों को वश में रखने वाला (नवद्वारे पुरे देही हंसः) सात शिर में और दो नीचेके इन्द्रियरूप छिद्र जिसमें नौ द्वारे हैं ऐसे इस शरीररूप नगर राजधानी में बैठा सब अविद्यादि दोषों का हनन करने वाला होनेसे हंस कहाता हुआ जीवरूपसे विद्यमान परमात्मा (बहिर्लेलायते) आंख आदि झरोखों द्वारा बाहर को झांकता विषय भोग के अर्थ इन्द्रियों को लपकाता है ॥

भावार्थ—पुरुष के शरीर नगर में नौ द्वार हैं सात शिर में दो मलमूत्र त्याग के नीचे, स्त्रियों के शरीर में मूत्र त्याग का एक छिद्र अधिक होता है। ऐसे नवद्वार वाले नगर रूप मलिन शरीरमें रहता हुआ भी तथा विषयों के भोगार्थ लपकता होनेसे बद्ध जैसा प्रतीत होताभी अपने वास्तविक स्वरूप से सब चराचरको जो वश में रखता है। उसी जीवरूप से शरीरमें अवस्थित परमेश्वर को सब दुःखों से छूटने के लिये सम्यक् जानना चाहिये ॥ १८ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं नच तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥१९॥

अ०—अथ परमात्मनो वास्तविकं ज्ञानात्मनावस्थितं निर्विकारादिस्वरूपमाह—यः पाणिपादमन्तरेण सर्वं गृह्णाति सर्वत्र गन्तुं च शक्नोति चक्षुषी अन्तरेण सर्वं पश्यति कर्णमन्तरेण सर्वस्य गुप्तमपि शब्दं शृणोति च स एवानन्तःकरणोऽपि सर्वज्ञत्वात् सर्वं वेद्यं वेत्ति नच तस्याद्वैतत्वादन्यः कोऽपि वेत्तास्ति नान्योऽतोऽस्तिद्रष्टेतिश्रुतिः । अतमग्र्यमनादिं महान्तमनन्तं पुरुषं परपुरुषत्वयुक्तं सर्वोत्पादकमीशं ब्रह्मविद आहुः ॥

भा०—जीवरूपेण शरीरावस्थत्वात्पाण्यादिमान् प्रतीयमानोऽपि वस्तुतो विनश्वरसर्वसाधनरहित ईश्वरः स्वयमेव सर्वं वेत्ति तस्यान्यः कोऽपि वेत्ता नास्ति सचानादिकालान्महत्त्वेन पूर्णो व्याप्तस्तद्विज्ञानान्मोक्षः ॥१९॥

भाषार्थः—अब ज्ञानरूप से अवस्थित परमात्मा के निर्विकारादि वास्तविक स्वरूप को दिखाते हैं (अपाणिपादो जवनो ग्रहीता) उस के हाथ पाव नहीं पर ग्रहण तथा वेगसे चलना हाथ पाव का काम करता (पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः) वह चक्षु के बिना ही सब के कामों को सर्वत्र देखता, उस के कान नहीं हैं पर सब की गुप्त बातों को भी सर्वत्र सुनता (स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता) अन्तःकरण रहित होने पर भी वही सब जानने योग्य को जानता परन्तु अद्वैत होनेसे अन्य कोई उसका जानने वाला नहीं है क्योंकि शरीरों में एकेश्वर से भिन्न अन्य कोई देखने जानने वाला नही है। यह श्रुति में कहा है। (तमग्र्यं महान्तं पुरुषमाहुः) उसको अनादि अनन्त सर्वोपरि पुरुषपन से युक्त सर्वोत्पादक ब्रह्मज्ञानी लोग कहते है ॥

भा०:—जीव वा क्षेत्रज्ञ रूप से शरीरोंमें अवस्थित होने से आत्मा हाथ आदि वाला दीखता हुआ भी वस्तुतः विनाशी सब साधनों से रहित ईश्वर स्वयमेव सब को जानता है उसका वा माया-कार्य का अन्य कोई जानने वाला नहीं है वह अनादि कालसे अनन्त पूर्ण व्याप्त है उसीके ज्ञानसे मोक्ष होता है॥ १९॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ २० ॥

अ०—अस्य जन्तोर्ब्रह्मादिप्राणिमात्रस्य गुहायां हृद्देशे सूक्ष्मादपिसूक्ष्मतरो महतोऽपि महत्तरो निरतिशयसूक्ष्मो निरतिशयमहांश्चात्मा परमात्मा निहितोऽधिष्ठितस्तं महत्त्वादतिशयेन सर्वस्मादपरिच्छिन्नमक्रतुं क्लेशकर्मविपाकाशयैरसंसृष्टमीशं तस्यैव सर्वधारकस्य प्रसादात्तदनुग्रहमवाप्य वीतो निवृत्तो विषयाणामप्राप्तौ शोकस्तापोऽस्य तादृशो भूत्वैव जीवः कश्चित्पश्यति तत्त्वतस्तमयमहमस्मीति साक्षात्स्वयमेवस्वात्मानं जानाति ॥

भा०—निवृत्तशोकादिकल्मषः कश्चिदेव तस्य कृपयैव स्वस्यान्तःकरणे ध्यानेनैव निरतिशयसूक्ष्मत्वादिविशिष्टमेवेश्वरं स्वीयं वास्तवं स्वरूपं कदाचिदेव वेत्ति । तस्मात्साधारणः कोऽपि स्वस्य वेत्ता नास्तीति पूर्वकथनमपि पुष्टिमेव लभते ॥ २० ॥

भाषार्थः—(अस्य जन्तोर्गुहायाम्) इस ब्रह्मादि प्राणी मात्र की हृदय देशस्थ बुद्धिमें (अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा) सूक्ष्मोंसे सूक्ष्म और बड़ोंसे भी बड़ा अर्थात् सूक्ष्मता वा महत्त्वकी अन्तिम सीमाको प्राप्त चेतनस्वरूपसे (निहितः) स्थित है । और महत्वकी असीमतासे सबसे अपरिच्छिन्न तम-क्रतुं महिमानमीश धातोः प्रसादाद्वीतशोकः पश्यति) कर्मफल भोगकी वासनाओंसे अलिप्त महत्स्वरूप उस ईश्वरको उसीकी

रूप और अवस्था से विलक्षण भोगों के न लिप्त होकर तथा ब्रह्म का निश्चय हुआ देखा जो कर ही कोई यह मैं हूं इस प्रकार अनुभव करने स्वरूपको ज्ञानी जानता अर्थात् देखता जाता है ॥

भा०—योगादि द्वारा ब्रह्म का दूर हुआ है देखो कोई भी पुरुष उस को जानते ही अपने अन्तःकरण में ध्यान समाधि के द्वारा ही अनन्त सुखादि युक्त ईश्वर को नाम अपने वास्तविक स्वरूपको अभी जान जाता है। इस से शास्त्र कोई अपने आप को जानने वाला नहीं है यह पूर्व का कथन भी ठीक युक्त हो जाता है ॥ २० ॥

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् । जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनोऽभिवदन्ति नित्यम् ॥२१॥

अ०—उक्तार्थदार्ढ्याय मन्त्रद्रष्टुरनुभवं दर्शयति—अहमेतमजरं जरावस्थारहितं विपरिणामधर्मशून्यं पुराणं सनातनं सर्वात्मानं सर्वेषामात्मरूपेण शरीरेष्ववस्थितं सर्वान्तर्यामिणं विभुत्वाद् व्यापकत्वात्सर्वस्मिन् गतं प्राप्तं यस्य ब्रह्मवादिनो जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यं च नित्यमभिवदन्ति तं वेद जानामीति मन्त्रद्रष्टा वदति ॥

भा०—यस्य मिथ्याज्ञानापाये रागद्वेषमोहदोषा दग्धबीजकल्पा भवन्ति सएव शोकादिरहितो ध्यानयोगाभ्यासेन प्रत्यक्चेतनस्वरूपं सर्वानन्दमयं परमात्मानं हृदि साक्षात्कुर्वन्परमं संतुष्यति ज्ञातं मया ज्ञातव्यमिति च मन्यते ॥ २१ ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त विचार की दृढता के लिये मन्त्र द्रष्टा ऋषि अनुभव दिखाते हैं कि (ब्रह्मवादिनो यस्य जन्मनिरोधं प्रवदन्ति) ब्रह्मवादी लोग जिस के जन्म होने का अभाव कहते (नित्यमभिवदन्ति) और जिसको नित्य २ अभिवादन नमस्कार प्रणामादि करते हैं उस (एतमजरं पुराणं विभुत्वात्सर्वगतं सर्वात्मानमहं वेद) इस जीर्णावस्था रहित अर्थात् जिसका परिवर्त्तन नहीं होता सदा एक से सामर्थ्य वाले विभु—व्यापक होने से सब पदार्थों को प्राप्त सब के आत्मरूप से शरीरों में अवस्थित सर्वान्तर्यामी सनातन ब्रह्म को मैं जानता हूं ऐसा मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहते हैं

भा०—मिथ्याज्ञान के छूटजाने पर जिस पुरुषके रागद्वेष मोहादि दोष भस्म हो जाते [जिन में फिर उगने की शक्ति नहीं रहती] वही शोकादि रहित पुरुष ध्यानरूप योगाभ्याससे अपने अन्तरात्मस्वरूप सर्व आनन्दमय परमात्माको हृदय में साक्षात् करता हुआ परम सन्तोष को प्राप्त होता और मानता है कि मैंने ज्ञातव्यको जान लिया ॥ २१ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन भीमसेनशर्मणानिर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः ।

यएकोऽवर्णो बहुधा शक्ति-
योगाद्‌ वर्णाननेकान्निहितार्थो
दधाति । विचैति चान्ते विश्वव-
मादौ स देवः सनो बुद्‌ध्या
शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥

अ०–य एकोऽद्वितीय ईश्वरः स्वयमवर्णो ब्राह्मणो शरीरेषु तत्तन्नामरूपैरवस्थितोऽपि वस्तुतः सर्वजातिवर्णत्ववर्जितो निहितार्थो व्यवसितकर्मफलभोगप्रयोजनः स्वार्थनैरपेक्ष्येण स्वस्मिन्बहुविधशक्तीनां सम्बन्धादनेकान् ब्राह्मणादिवर्णान्दधाति विदधाति । स देव आदौ प्रलयात्पूर्वं सर्गारम्भकाले विश्वं सर्वमिदं रक्षति । अन्ते प्रलयावसरे च व्येति विनाशयति स नोऽस्मान् शुभया कल्याणाभिमुखया बुद्‌ध्या संयुनक्तु येन निःश्रेयसभाजः स्याम ॥

भा०–यएकोऽसहाय एवास्य स्थावरजङ्गमस्योत्पत्तिस्थितिलयाननायासेनैव करोति

सएव निरतिशयः सर्वाध्यक्षः स्वस्य कल्याणाय मनुष्येण प्रार्थनीयः ॥ १ ॥

भाषार्थः-(यएकोऽवर्णो निहितार्थः) जो एक अद्वितीय ईश्वर ब्राह्मणादि शरीरोंमें उस २ नामरूपसे विद्यमान होने पर भी वास्तवमें सब जाति और ब्राह्मणादिपनके गुण कर्मोंसे रहित सबको शुभाशुभ कर्मफल भुगाना ही जिसने सृष्टि रचने का मुख्य प्रयोजन रक्खा है ऐसा हुआ (बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निदधाति) अपने में नाना प्रकार की शक्तियों का योग होने से अनेक ब्राह्मणादि वर्णों को [जो मूलरूप से चार वर्ण और अवान्तर भेदों से असंख्य प्रकार के ब्राह्मणादि हो जाते हैं] बनाता है (स देवोऽन्ते विश्वं विचैति) वह देव ईश्वर सृष्टिस्थितिके अन्तमें प्रलय का समय आते ही इस जगत् को विनष्ट कर देता (चादौ) और प्रलय से पूर्व समय में सब की रचा करता है (स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु) वह ईश्वर कल्याणकारिणी उत्तम धर्मानुकूल बुद्धि से हम को संयुक्त करे जिससे हम निःश्रेयस सुखके भागी हों ॥

भावार्थ-जो एक ईश्वर किसी की सहायता न लेकर स्थावर जङ्गमरूप इस सब जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलयों को सहज में ही किया करता है वही सर्वोपरि सबका स्वामी है हे मनुष्यको अपने कल्याण के लिये उसी की प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥२॥

अ०-अग्निः पाचको भस्मीकरणशक्तिमान्, आदित्यः कालविभागहेतुत्वात्सर्वभावपरिणामनिमित्तम्, सर्वचेष्टादिहेतुर्वायुः, मृदुलावण्यादिगुणस्य प्रधानं कारणं चन्द्रमोऽभिधं सोमतत्त्वं सर्वत्र व्याप्तम्, शुक्रमतिशुक्लत्वं गुणः सर्वत्रस्थः, ब्रह्म बृहत्तरः सर्वस्योत्पादनद्वारा वर्द्धको हिरण्यगर्भआत्मा आपोऽन्तर्दाहनिवारकं शीतगुणप्रधानं तत्त्वं, प्रजापतिः प्रजातायाः सृष्टेरक्षको विराडात्मा । अग्न्यादिपदार्थानां यत्र निरतिशयत्वं भस्मीकरणादिशक्तीनां यत्र काष्ठाप्राप्तिः प्राधान्यं तदेवात्मतत्त्वं प्रधानभावेनाग्न्यादिपदवाच्यमर्थादग्न्यादिपदार्थेषु तत्तन्नामरूपावच्छिन्नं ब्रह्मात्मतत्त्वमेवास्ति नैवाग्न्यादयःपरमात्मसत्तावलम्बनमन्तरेण किमपि कार्यं साद्धुं शक्ता इति बोध्यम् । एवकारः प्रत्येकमभिसंबध्यते ॥

भा०-संसारस्थवस्तुषु गौणमग्न्यादित्वमग्न्यादिषु तत्तन्नामरूपेण विद्यमाने परात्मनि च निरतिशय प्रधानमग्न्यादीनामप्यग्न्यादित्वस्य मूलकारणत्वात्तस्य । गौणमु-

ख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्यय इति न्यायोऽपी-दृशादेव वेदान्निस्सारितः पाणिन्यादिभिस्ततः सार्वत्रिक एव विज्ञेयः । लोकेऽपि गौणमुख्य-योर्विदुषोः प्रसङ्गे मुख्यएव विद्वत्पदवाच्यः प्रतीयते विद्वांस्त्वयमेवास्तीति वदन्ति तद्वदि-हापि योज्यम् । शुक्लयजुर्वेदे अ० ३२ अयमा-रम्भमन्त्रः ॥ २ ॥

भावार्थः-(तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः) सब को भस्म वा भक्षण करने की शक्ति वाला अग्नि वही, काल विभाग का हेतु होने से सब विद्यमान पदार्थों के परिणाम का निमित्त वही, सब चेष्टादि क्रियाओं का कारण वही और सब प्रकार की कोमलता वा शोभा का मूल कारण चन्द्रमा नामक सोम वही है (तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः) तारे आदि की अत्यन्त शुद्ध कान्ति वाला शुक्र निर्मल वही, सब से बड़ा उत्पत्ति द्वारा सब का बढ़ाने वाला हिरण्यगर्भ ब्रह्मा वही, भीतरी दाह वा ताप का निवारक-शीतल गुण की प्रधानता वाला अप् वही और उत्पन्न हुई सृष्टि का सर्वोपरि रक्षक विराडात्मक प्रजापति वही है । अभिप्राय यह कि अग्नि आदि पदों का जिस में निरतिशय अर्थ घटता अर्थात् भस्म करने आदि शक्तियों की जिस में अत्यन्त सीमा हो जाती जो उन २ शक्तियों में सर्वोपरि प्रधान है वही आत्मतत्त्व प्रधानरूप से अग्नि आदि पदों का वाच्यार्थ है अर्थात् अग्नि आदि पदार्थों में उसी २ अग्न्यादि-क नामरूपसे परिच्छिन्नसा प्रतीत होने वाला वही एक ब्रह्मस्व रूप आत्मतत्त्व है । क्योंकि परमात्म सत्ताका अवलम्ब हुए

बिना अग्न्यादिपदार्थ कुछ भी दाहादि कर्म नहीं कर सकते इससे अग्न्यादि देवता नामरूप वही परमेश्वर है मन्त्र में एव शब्द प्रत्येक अग्न्यादि शब्द के साथ लगाने के लिये है॥

भावार्थ०—अग्न्यादि नामक संसार के सब वस्तुओं में अग्न्यादिपन गौण है और अग्न्यादि में तत्तद्रूप से विद्यमान परमात्मा में अग्न्यादिपन असीम है क्योंकि अग्नि आदि के अग्न्यादिपन का भी मूल कारण वही है (गौण०) गौण मुख्य दोनो के प्रसङ्ग में मुख्यमें ही कार्य वा व्यवहार होता है। यह परिभाषारूप न्याय पाणिनि आदि आचार्यों ने ऐसे ही वेद मन्त्रो से निकाला है और वेद से निकालने के कारण ही यह नियम सर्वदेशी है सब को मानने ही पड़ता है। लोक में भी गौण मुख्य दो विद्वानों के एकत्र होने पर वा दो की चर्चा होने पर मुख्य ही विद्वान् पदवाच्य होता है। लोग कहते हैं कि विद्वान् तो यही हैं। इसी प्रकार यहा भी अग्नि आदि पदों का वाच्यार्थ उस २ नामरूपसे विद्यमान वही एक ब्रह्म कहा जानो। यह मन्त्र यजुर्वेद अ० ३२ के आरम्भ में ऐसा ही ज्यों का त्यों है॥ २॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥ ३॥

अ०—हे परमात्मन्! सर्वस्योत्पादने त्वं स्त्री त्वमेव पुमान्-स्त्रीरूपायां प्रकृतौ त्वमेवोपादानशक्तिं दधासि निमित्तरूपं पुंस्त्वं च

त्वय्येवास्ति। तथा त्वं कुमार उत कुमार्य्यैव च भवसि। त्वमेव च जीर्णो वृद्धो भूत्वा दण्डेन वञ्चसि त्वमेव सर्वयोनिषु जीवरूपेण प्रादुर्भूतः सर्वप्राणिषु सर्वरूपो भवसि॥

भा०—बाल्ययौवनवार्द्धक्यावस्थास्वेकएकएवात्मा बाल्याद्यवस्थारूपेण शरीरोपाधिधर्मेण बालादिरूपः प्रतीयमानोऽपि वस्तुतो बालो युवा वृद्धो वा नास्ति। स्त्रीपुंसकुमारकुमारीजीर्णपदैरवस्थात्रयबोधनेन सर्वचराचरसंसारवस्तुष्वेकस्यैवात्मनोऽवस्थितिर्बोधिता। तथाचोक्तम्—एकएवहिभूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधाबहुधाचैव दृश्यतेजलचन्द्रवत्॥ एवमेक एवेश्वरः सर्वप्राण्यप्राणिषूद्भूतानद्भूतचिच्छक्त्या प्रविष्टो दर्शनादिहेतुर्भवति॥ ३॥

भाषार्थः—हे परमात्मन्! सब को उत्पन्न करने में (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि) तुम्हीं स्त्री और तुम्हीं पुरुष हो अर्थात् तुम्हीं सब के माता पिता भ्राता भगिनी वा पति पत्नी आदि भावको प्राप्त हुए हो। यद्यपि सब संसार की उत्पत्ति में प्रकृति स्त्री है तथापि उसमें तुम्हीं उपादानशक्तिको धारण करते हो और निमित्त कारणरूप पुरुषपन तुम में स्वतः ही है तथा (त्वं कुमार उत वा कुमारी) तुम कुंआरे और कुंआरी

हो अर्थात् बालक बालिका रूप तुम्हीं हो (त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि) तुम वृद्ध अवस्था वाले शरीर में लकड़ी हाथ में लेकर उस के सहारे से चलते हो (त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः) और तुम ही सर्वयोनिस्थ प्राणियों में जीवरूप से प्रकट हो के सर्व रूप होते हो ॥

भा०—बालक युवा और वृद्धावस्थाओं में एकही आत्मा शरीरोपाधि के धर्म बालादि अवस्था रूप से प्रतीत होता हुआ भी वास्तव में आत्मा बालक युवा वा वृद्ध नहीं है। स्त्री पुंस् कुमार कुमारी और जीर्ण पदों से [अर्थात् कुमार कुमारी से बाल्य, स्त्री पुंस् पदों से यौवन और जीर्ण पद से वृद्धावस्था दिखायी हैं] तीन अवस्था बोधन द्वारा संसार के सब चराचर पदार्थों में एक ही आत्मा की विद्यमानता बोधित की है। यही बात (एक एव हि०) श्लोकसे दिखायी है कि एक २ जाति में एक प्रकार से तथा अनेक जातियोंमें अनेक प्रकार से एक ही नित्य आत्मा प्रतिबिम्बित है। इस से सब चराचरमें प्रकट वा अप्रकट रूप से एकही चेतन शक्ति रूप ईश्वर प्रविष्ट होकर देखनादि चेतन का काम करा रहा है ॥ ३ ॥

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिस्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

उ०—हे परमात्मन् ! नीलः कृष्णः पतङ्ग उत्पतनशीलो भ्रमरो लोहिताक्षो रक्तनेत्रो

हरित्वर्णः शुकादिस्तडिद्गर्भोऽस्या तादृशोमेघ ऋतवः समुद्राश्चेत्यादिवस्तुषु तत्तद्रूपेणावस्थितः । अतएव नास्त्यादिः कारणमस्य यतो विश्वानि भुवनानि जातान्युत्पन्नानि तादृशस्त्वं विभुत्वेनाद्यन्तशून्यत्वेन सर्वत्र वर्त्तसे ॥

भा०–अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । एवमीश्वरस्तत्तन्नामरूपेण सर्ववस्तुष्ववस्थित इत्येवात्रोपलक्षणेन प्रदर्शितम् । यथा सूत्रमेव बहुविधवासोरूपेणावस्थितं भवति यथा च हाटकं भूषणनामरूपेणावस्थितं दृश्यते तथा चोक्तम् । सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्येविष्णौप्रकल्पिताः । व्यक्तयोविविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् । इत्यात्मबोधे–स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजास्विति शुक्लयजुः संहितायाम् । इत्थं नीलकृष्णपतङ्गादिरूपेण भगवानेव विद्यते ॥ ४ ॥

भाषार्थः–हे परमेश्वर । (नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्ष.) उड़ने के स्वभाव वाला काला पक्षी भौंरा–नाम भ्रमर तथा हरा लाल नेत्रों वाला तोता आदि पक्षी (तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः) तडित् नाम बिजुली जिस में रहती ऐसा मेघ, वसन्तादि ऋतु और समुद्र अन्तरिक्ष के वा पृथिवी के इत्यादि वस्तुओं में उन २ के ही नाम रूप से आप ही विद्यमान हैं

अर्थात् भ्रमरादि सर्व रूप तुम ही हो (अनादिस्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे) जिन का आदि नाम कारण कोई नहीं और यतो जातानि भुवनानि विश्वा) जिन तुम से यह सब लोक लोकान्तर अनन्त ब्रह्माण्ड भर उत्पन्न हुआ है ऐसे तुम आद्यन्त शून्य अनन्त रूप से विद्यमान हो।

भा०—कठोपनिषद् में लिखा है कि "जैसे' अग्नि सब जगत् के उस २ पदार्थ में उस २ के नाम से ही बन रहा है,, इसी प्रकार ईश्वर सब वस्तुओं में उसी २ के नाम रूप से व्याप्त हो रहा है। यहां नील पतङ्गादि के उपलक्षणमात्र से यह बात दिखलाई है कि जैसे एक सूत ही अनेक वस्त्रों के नाम रूप से विद्यमान है तथा जैसे सुवर्ण अनेक भूषण नाम रूप हुआ दीखता है वैसे देव मनुष्य पशु पक्ष्यादि रूप में एक ही ईश्वर विद्यमान है। आत्मबोध में लिखा है कि जैसे सुवर्ण में कड़ादि भूषण अनुस्यूत हैं वैसेही सत् चित् स्वरूप विष्णु भगवान् में ये सब देव मनुष्यादि व्यक्तियां ओत प्रोत हैं। तथा शुक्ल यजुः संहिता में लिखा है कि वह व्यापक परमेश्वर सब प्रजा में ओत प्रोत हो रहा है। इस प्रकार नील पक्षी आदि नाम रूप से एक भगवान् ही विद्यमान है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः॥
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहा-
त्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥

अ०—तेजोऽबन्नलक्षणां मायां दर्शयति लोहितशुक्लकृष्णां रजःसत्त्वतमोगुणमयीं समानरूपा,उपादानकारणगुणप्रधाना बह्वीः प्रजाः सृजमानामजां स्वयमविनश्वरामनादिभूतामेकोऽजः कश्चिदनादिर्जीवो जुषमाणः तया प्रीतिं स्नेहं कुर्वन्ननुशेते भजतेऽन्यः कश्चिच्च भुक्ता भोग्या मयाऽन्यैश्चेयमिति मन्यमान एनां जहाति तेन मुच्यते ॥

भा०—त्रिगुणात्मके प्रवाहेणानादिभूते जगति ये प्राणिनो भोगोत्कण्ठयाऽनुरज्यन्ते ते जन्ममरणप्रवाहपतिता दुःखमेवाधिक्येन लभन्ते । ये भोगोत्कण्ठां समापयन्ति भोगा अस्माभिर्भुक्ता नात्र भोग्यं विशिष्टं सुखमस्त्यपितु दुःखमेव बहुलमिति मन्यमाना जहत्येनामजां प्रकृतिं ते विषयदोषदर्शिनो मुच्यन्ते दुःखबहुलात्संसारचक्रप्रवाहात् ॥ ५ ॥

भाषार्थः-छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित अग्नि, जल और पृथिवीरूपों में परिणत होने वाली अनादि सान्त माया नाम प्रकृति को दिखाते है (लोहितशुक्लकृष्णाम्) रक्त-लाल रजोगुणी, शुक्ल श्वेत —सत्त्वगुणी, कृष्ण काली तमोगुणी इन तीनों गुणों वाली (सरूपा बह्वीः प्रजाःसृजमानामेकामजाम्) कारण के गुणानुकूल कार्य होने से अपने तुल्य गुणों

वाली नाना प्रकार की बहुतसी प्रजाओं को रचती हुई एक स्वरूप से अनादि प्रकृति से (जुषमाणो ह्येकोऽजोनुशेते) प्रीति अनुराग करता हुआ कोई जीव उस के पास सोता उससे लिपटता सेवन भजन पूजन ध्यान उसी का करता है अन्योऽजो भुक्तभोग्यामेनां जहाति) और कोई अनादि जीव विरक्त सन्यासी महात्मा ज्ञानी इस प्रकृतिको असंख्य लोगों की भोगी हुई निकृष्ट वेश्या के समान विगड़ी जूठी घृणित मान के छोड़ देता है उस के भोगने को बुरा समझता है इस कारण असंख्य बड़े २ दुःखों से बच जाता है ॥

भा०—त्रिगुणमय, प्रवाहसे अनादि इस जगत्में जो प्राणी विषय सुख भोगने की उत्कण्ठा से अनुरागकरते हैं वे जन्म मरणके प्रवाह में पड़े बहते हुए अधिकतासे दुःख ही पाते हैं। और जो भोगकी तृष्णाको समाप्त करते हैं कि भोग हमने भोग लिये अब अपने वा अन्योंके जूठे किये भोगो को क्या भोगें ? इन भोगोमें सुख थोड़ा तथा दुःख बहुत है ऐसा मानते हुए इस प्रकृतिमय संसारको छोड़ देते हैं वेही विषयों में दोष देखने वाले दु ख ही जिस में प्रधान है ऐसे संसारचक्र के प्रवाह से छूट जाते हैं। [लोक में अज—बकरा—और—बकरीको कहते हैं। जैसे कोई बकरा एकसे बहुत बच्चे जननें वाली बकरी से प्रेम करे और कोई उस बकरी से उदासीन विरक्त हो जावे ऐसे ही अनेक जीव इस संसाररूप प्रकृति के गुण विषयों से प्रीति रखते उसीसे लगे लिपटे जन्मते मरते चले जा रहे हैं और कोई २ कभी २ इस शरीरादि वा स्त्री आदि रूप प्रकृति से उदासीन विरक्त हो कर सनातन ईश्वर को प्राप्त हो जाते हैं] ॥ ५ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयो-

रन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ ६ ॥

अ०–सुपर्णौ शोभनगमनौ शोभनप्रकारेण जगतो रक्षकौ वा सयुजा सर्वदा संयुक्तौ व्याप्यव्यापकसम्बन्धेनाभिन्नौ सखाया समानख्याती आत्मपदवाच्यौ तौ द्वौ विज्ञानात्मपरमात्मानौ समानमेकमेव वृक्षं छिद्यमानं नश्वरं शरीरं परितः स्वजाते समाश्रयेते तयोरन्य एको जीवः स्वादु पिप्पलं सुखदुःखरूपं कर्मफलमत्ति भुङ्क्तेऽन्यः परमात्माऽनश्नन् फलभोगात्सर्वदैव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावत्वेन विरक्तोऽभिचाकशीति साक्षिभूतः पश्यन्नास्ते। द्वेत्यादौ सुपांसुलुगित्यादिना प्रथमाद्विवचनविभक्तेराकारादेशः ॥

भा०–यद्यपि परमार्थतो विज्ञानात्मा जीवो वा कोऽपि नास्ति तथापि व्यवहारदशायां प्राणयन्तःकरणालोके चिदाभासस्य जीवत्वं मठघटाकाशादिवदविच्छिन्नत्वेन सर्वशरीरावस्थस्यात्मनः परमेश्वरत्वमिति भेदमभ्युपगम्यात्रात्मद्वयमुक्तं तच्चागामिमन्त्रेषु पर-

मार्थवस्त्ववधारणार्थमेव । ऋक्संहितायां प्रथममण्डले सू० १६४ । २० मन्त्रोऽयं पठितः॥६॥

भाषार्थः- (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया) अच्छे प्रकार सर्वत्र प्राप्त होने वाले वा जगत् के पदार्थों के सम्यक् रक्षक [पल्लृ-पलने से वा पृ पालन पूरणयोः । धातु से पर्ण शब्द बना है] सब कालमें व्याप्य व्यापक सम्बन्धसे एक साथ रहने वाले तथा चेतन वा आत्मादि एक नाम से कहाने वाले दो पक्षियोंके तुल्य जीवात्मा और परमात्मा (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) विनाश को प्राप्त होने वाले अनित्य शरीररूप एकही वृक्ष पर रहते हैं (तयोरन्यः स्वादुपिप्पलमत्ति) उन दोनों में से एक जीवात्मा वृक्ष फल के तुल्य सुख दुःख रूप कर्म के स्वादिष्ट फल को खाता चीखता स्वाद ले २ कर खाता भोगता है और (अन्योऽनश्नन्नभिचाकशीति) द्वितीय परमात्मा कुछ भी न खाता भोगता हुआ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव होनेके कारण भोग से सदा विरक्तसाक्षिरूप हो कर जीव के भोगों का तथा क्रियमाण कर्मों का सूर्यादिके प्रकाशवत् प्रेरक वा निमित्त है अर्थात् कर्म कराने और फल भुगाने वाला होने पर भी प्रदीपवत् निरिच्छ है ॥

भा०-यद्यपि वास्तव में पारमार्थिक विचार से विज्ञानात्मा वा जीव सच्चिदानन्द ईश्वरसे भिन्न कोई नहीं है तथापि व्यवहार दशा में सब प्राणियों के बुद्धिरूप दर्पण में चेतनशक्ति का आभास वा प्रतिबिम्ब जीव कहाता और घटमठाकाशादि के तुल्य अविच्छिन्नरूपसे सब प्राणि शरीरों में अवस्थित परमेश्वर कहाता ऐसा भेद मान कर इस मन्त्र में दो आत्मा इस लिये कहे हैं कि अगले मन्त्रों में परमार्थ वस्तु का अवधारण जीवत्व की दुर्दशा दिखा कर किया जावे। यह मन्त्र ऋक्संहिता में १ । १६४ । २० है ॥ ६ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ ७ ॥

अ०—समानएकस्मिन् वृक्षे छिद्यमाने नश्वरे देहे पुरुषो जीवोऽविद्याकामकर्मफलरागादिजन्यगुरुभाराऽऽक्रान्तो नद्यामिव दुःखे निमग्नो निश्चयेन देहात्मभावमापन्नोऽयमेवाऽहममुष्य पुत्रोऽस्य नप्ता कृशः स्थूलो रूपवान् निर्गुणः सुखी दुःखीत्येवं कृतनिश्चयो नान्योऽस्मादस्मीति जायते म्रियते सम्बन्धिबान्धवैश्च संयुज्यते। एवंप्रकारेण निमग्नो मुह्यमानो मोहं कुर्वन्ननीशयाऽसमर्थत्वेन शोचति पुत्रो मम मृतो भार्य्या मे नष्टा धनं मेऽपहृतं किं कुर्याम्—कथं जीवेयम्—अशक्तोऽहं प्रतिकर्त्तुम्—न किमपि कर्त्तुं शक्नोमि । एवं रोदिति विलपति मुहुर्मुहुः सन्तप्यते दुःखानलेन दह्यमानः । यदा संस्कारप्राबल्याच्छुभफलोदयाद्दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितयोगाभ्यासेन तस्मिन्नेव शरीरवृक्षेऽनिमग्नमन्यं

बहुभिर्जुष्टं स्वतोऽभिन्नमपि भिन्नमिवाविद्यया प्रतीयमानमीशमनन्तशक्तिं पश्यति साक्षात्करोति तदाऽस्येशस्य महिमानं बुद्ध्वा वीतशोकः सर्वविधशोकवर्जितो भवति ॥

भा०—लोकेऽपि यो यादृशदुःखप्रतीकारे समर्थो नासौ शोचति यश्च दुःखनिवारणेऽशक्तः सएव शोकमग्नो जायते दुःखप्रतीकारसामर्थ्यं च प्रत्यगात्मविचारप्राबल्येन बुद्धितत्त्ववैशारद्याज्जायते। यो हि लोके यादृशो बुद्धिमान् दृश्यते स तावदेव दुःखप्रतीकारमारभते मुच्यते च दुःखात्। ईश्वरबोधश्च बुद्धेः सूक्ष्मत्ववैशारद्ययोरन्तिमं कृत्यमतएवोक्तम्—"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः,, अतएव सुखमभीप्सता दुःखं जिहासता च पुरुषेण समापितबाह्यविषयभोगोत्कण्ठेनाध्यात्मरत्यासीनेन बुद्ध्यारूढेन भाव्यमित्यायातम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः) एक ही नाशवान् शरीरादि जगत् में जीवात्मा अविद्या काम और कर्म फल भोग की वासनाओं सम्बन्धी भार से दवा हुआ दुःख रूप अगाध नदी में डूबता हुआ शरीर को ही आत्मा मानता है कि मैं अमुक मनुष्य का पुत्र अमुक का पौत्र, दुर्वल

हृष्ट पुष्ट रूपवान्, कुरूप, गुणवान्, मूर्ख, पण्डित, सुखी वा दुःखी हूं ऐसा निश्चय वाला इन दशाओं से भिन्न मैं नहीं ऐसा मानता हुआ जन्मता मरता स्त्री पुत्रादि के साथ संयुक्त वियुक्त होता हुआ इस प्रकार इन्हीं मिथ्या विचारों में निमग्न तथा (मुह्यमानः) मोह जाल में फंसा हुआ (अनीशया शोचति) दुःख निवृत्ति के लिये असमर्थ हुआ शोचता है कि मेरा पुत्र मर गया हा। मेरी प्रिया स्त्री नष्ट हो गई हा। मेरा धन छिन गया अधिकार छिन गया अब क्या करूं कैसे जीवूं मैं असमर्थ हूं बचने का कुछ उपाय नहीं कर सकता ऐसे रोता विलाप करता वार २ दुःखाग्नि से जलता हुआ सन्ताप करता है। और (यदा) जब संस्कार की प्रबलतानुसार शुभ फलका उदय होने से दीर्घ काल तक निरन्तर सेवन किये योगाभ्यास द्वारा उसी शरीर वृक्ष में रहते हुए भी दुःखसागर में न डूबने वाले (अन्यं जुष्टमीशं पश्यति) अन्य बहुत ज्ञानियो योगियो से सेवित वास्तवमें अपने से अभिन्न भी अपनी अविद्योपाधि होने से भिन्न प्रतीत होने वाले अनन्त शक्ति ईश्वर को साक्षात् देखता है (अस्य महिमानमिति वीतशोकः) तब ईश्वर की महिमा को जान कर सब प्रकार के शोकों तथा दुःखोंसे छूट जाताहै।

भा०—लोक में भी जो दुःख के निवारण में जैसा समर्थ होता है उस को वैसा कम शोक सताता और जो दुःख के निवारण में असमर्थ होता वही शोकसागर में डूबता है। और दुःख हटाने का सामर्थ्य भी भीतरी विचार की प्रबलतासे बुद्धितत्व की ठीक शुद्धि तथा सूक्ष्मता होने पर ही होता है। जो जैसा लोक में बुद्धिमान् दीखता है वह वैसा ही दुःख निवृत्ति का उपाय करता और दुःख से बच जाता

है। ईश्वर का बोध भी बुद्धि की ठीक शुद्धि और सूक्ष्मता का अन्तिम फल वा परिणाम है। कठोपनिषद् में कहा भी है कि " तेज सूक्ष्म बुद्धि द्वारा सूक्ष्मदर्शियों को ईश्वर दीखता भी है „ इसी लिये दुःख का त्याग तथा सुख की प्राप्ति चाहने वाले पुरुष को बाह्य विषयोंके भोग की तृष्णा को छोड़ के भीतरी आत्म विचार में रमते हुए बुद्धि पर आरूढ होना चाहिये यह अभिप्राय निकला जानो ॥ ७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ८॥

अ०—ऋच इत्युपलक्षणार्थम्। ऋग्वेदादेः सम्बन्धिनि प्राधान्येन वाच्येऽक्षरेऽविनाशिनि व्योमवद् व्यापके परमे निरतिशये यस्मिन्नधि मध्ये विश्वे सर्वेऽग्न्यादयो देवास्तन्मयं सर्वं जगन्निषेदुर्निषीदति निरन्तरं तिष्ठति। तदविनाशि ब्रह्म यो न वेद न जानाति स ऋचो ऋग्वेदादिवेदाध्ययनेन किं करिष्यति ? न किमपीत्यर्थः। व्यर्थं तस्य वेदाध्ययनं य इद्यएव तद् ब्रह्म विदुस्त इमे समासते विगतकल्मषाः सर्वोपद्रवरहिताः सुखेन सम्यगासते परमशान्त्या तिष्ठन्ति ॥

भा०=ऋग्वेदादयः सर्वे कर्मकाण्डप्रतिपादका अपि वेदाः कर्मकाण्डवर्णनमिषेण नानानामरूपात्मकाग्न्यादिदेवतानां प्रतिपादनेन परमेश्वरमेव प्रतिपादयन्ति । अग्न्यादिनामरूपैः परमात्मनएवावस्थितत्वात् । ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् । अहंक्रतुरहंयज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् । मन्त्रोऽहमहमेवाज्य-महमग्निरहंहुतम् ॥ इत्यादिप्रमाणैरेकस्यैव परमात्मनः कर्मसम्बद्धसर्वसाधनात्मकत्वं दर्शितं तस्मात्कर्मप्रतिपादकवेदभागोऽपि चिदात्मबोधकएवास्ति । अयमेव परो धर्मो यद्यथाकथमपि योगाभ्यासादिना परमात्मचिन्तनं कुर्यात्तदर्थं वेदोऽध्येतव्यो न च वेदाध्ययनमार्गेण परमात्मज्ञानसदृशमन्यत्र क्वापि सुखमानन्दो वास्ति तस्मात्तस्य परमधर्मत्वम्। अयमपि मन्त्रः । ऋग्वेदमण्डले १ । सूक्ते १६४ । ३९ द्रष्टव्यः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्) यहां ऋचः उपलक्षणार्थ है इससे ऋग्वेदादि वेदोंके सम्बन्धि मुख्य वाच्यार्थ अविनाशी आकाश के तुल्य व्यापक (यस्मिन्नधि विश्वेदेवा

निषेदुः) जिस असीम अनन्त ईश्वर के भीतर बड़ी २ प्रश-लाशक्तियों वाले सब अग्न्यादि देवता तथा देवमय सब स्थूल सूक्ष्म जगत् ठहरा हुआ है (तद्यो न वेद किमृचा करिष्य-ति ?) उस अविनाशी ब्रह्म को जो पुरुष नहीं जानता वह ऋग्वेदादि वेद पढ़ के क्या करेगा ? अर्थात् कुछ नहीं, उस का वेद पढ़ना व्यर्थसा ही है (यइत्तद्विदुस्त इमे समासते) और जो ही लोग उस ब्रह्म को जान लेते आत्म ज्ञान की ओर जिन का विचार झुक जाता है वे इन पाप दोष उप-द्रवादि से रहित होकर सुख पूर्वक शान्ति में ठहर जाते हैं॥

भा०-कर्मकाण्ड प्रतिपादक ऋग्वेदादि सब वेद कर्म-काण्ड वर्णन के द्वारा अनेक नाम रूपात्मक अग्न्यादि देव-ताओं के प्रतिपादन से परमेश्वर का ही वर्णन करते हैं क्योंकि अग्न्यादि सब नाम रूपों से वही एक आत्मा अव स्थित है । श्रीभगवद्गीता में लिखा है कि ब्रह्म रूप हविष् को जीव रूप ब्रह्म ने ब्रह्मात्मक अग्निमें होम किया ब्रह्मार्पण हो जाता है । तथा बड़े छोटे यज्ञ स्वधा स्वाहा, वषट्कार, पुरोडाशादि, मन्त्र आज्य घृत, अग्नि, होम इत्या-दि सभी में ईश्वर हूं । इत्यादि प्रमाणों में कर्म सम्बन्धी सब साधन रूप एक ही परमेश्वर को दिखाया है । जिस से सिद्ध हुआ कि कर्म प्रतिपादक वेद भाग भी ईश्वर बोधक है । मनुष्य के लिये यही परमधर्म है जो जिस किसी प्रकार योगाभ्यासादि के द्वारा परमात्मा का चिन्तन करे । उसी को जानने के लिये वेद पढ़ना चाहिये और वेदाध्ययन के द्वारा परमात्मा को जानने से होने वाले सुख के समान अन्यत्र कहीं सुख वा आनन्द नहीं है । इसी से यह परमधर्म है । यह भी ऋग्वेदमण्डल १ सूक्त १६४ में ३९ उनतालीसवां मन्त्र है ॥ ८ ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्त-
स्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥९॥

अ०—यज्ञाः पञ्चमहायज्ञा दर्शेष्ट्यादयश्च क्रतवो ज्योतिष्टोमादयो मखाः, व्रतानि चान्द्रायणादीनि छन्दांसि दुःखवारकाणि गायत्र्यादीनि वेदचतुष्टयरूपाणि मनुष्येण सेव्यानि, भूतं भव्यं भविष्यच्च वर्त्तमानं त्रिकालस्थं वस्तुजातं सुखं दुःखं च मनुष्यैर्भोक्तव्यम् । एतच्च वेदाः सृष्टेः प्रयोजनं वदन्ति । अस्मादेव प्रयोजनाद्धेतोर्मायायाः प्रकृतेःस्वामी मायाऽस्यास्तीति मायी विश्वं सर्वमेतद्यज्ञादिकं सृजते रचयति तस्मिंश्च कार्ये जगति शुभमनुष्ठातुमादिष्टाअप्यन्ये जीवाः केचिज्जीवा माययाऽविद्यया सन्निरुद्धाः शुभकर्मसेवनाद्दूरीकृता रागादिभिर्बद्धाः ॥

भा०—अस्यां सृष्टौ केषांचिज्जीवानां विशिष्टदुःखभोगायैव जन्म केषांचिन्मध्यकक्षायां सुखदुःखोभयभोगाय केषांचिच्चाधि-

क्षयेन सुखभोगाय शुभानुष्ठानेन मोक्षभावाय च जन्म भवति तत्र मध्या उत्तमा अपि केचिद्रागेण रक्ता अधः पतन्ति कामक्रोधादयएव तेषां पातकाः शत्रवो ज्ञेयाः ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(यज्ञाः क्रतवो व्रतानि छन्दांसि) पञ्चमहायज्ञादि नित्य कर्म तथा दर्शेष्टि आदि यज्ञ क्रतुनाम ज्योतिष्टोमादि बड़े यज्ञ और चान्द्रायणादि व्रत वा सब का मूल ब्रह्मचर्य व्रत छन्द नाम छाता छप्पर छत्त आदि के समान विपत्तियों घाम मेघादि के समान आने वाले दुःखों से बचाने वाले गायत्र्यादि छन्दोयुक्त चारो वेद इन यज्ञादि कर्त्तव्यों के द्वारा मनुष्यादि प्राणियों को सुख मिले इस प्रयोजन से तथा (भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति) भूत भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों काल के सब पदार्थ और सुख दुःख सामान्य वा निकृष्ट मनुष्यादि भोगें यही सृष्टि रचने का प्रयोजन है ऐसा वेद कहते हैं (अस्मान्मायीसृजते विश्वमेतत्) इसी हेतु वा प्रयोजन से मायानामक प्रकृतिका स्वामी प्रकृति को सदा अपने आधीन रखने वाला ईश्वर इस पूर्वोक्त यज्ञादि सब जगत् को रचता है इस उक्त प्रयोजन से सृष्टि की रचना होने पर भी (तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः) उस कार्य जगत् में भोग के लालच से शुभकर्मोंके सेवन द्वारा ज्ञानाधिकारी होकर मुक्त होने के लिये रचे हुए भी अनेक जीव अविद्याग्रस्त हो के शुभ कर्मों के सेवन से रुक जाते रागादि में बद्ध हो जाते हैं ।

भा०-इस सृष्टि में किन्हीं जीवों का विशेष दुःख भोगने के लिये ही किन्हीं का मध्यम दशा में रह कर सुख दुःख दोनों भोगने के लिये और किन्हीं का शुभ कर्मानुष्ठान द्वारा

अधिक सुख भोगने या मुक्ति होने के लिये जन्म होता उन में मध्यम और कहीं २ उत्तम कोटि के भी कोई २ मनुष्य रागादि में बद्ध होके नीचे को गिर जाते हैं और उन को गिराने वाले काम क्रोधादि ही मुख्य शत्रु जानो ॥ ९ ॥

मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम् । तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥

अ०-मायामेव प्रकृतिमस्य जगतउपादानकारणं विद्यान्मायास्वामिनं कालत्रयेऽपि सर्गस्थितिलयेषु मायाऽस्याधिकारेस्ति तं महान्तमीश्वराणामपीश्वरं निरतिशयैश्वर्यं मायिनं विद्यात्तस्य चिदात्मकस्य मायिनो मायासंबद्धैर्मायावशात्कल्पितावयवभूतैः सर्वमिदं भूरादिचतुर्दशभुवनात्मकं जगत् व्याप्तम् ॥

भा०-ब्रह्मभिन्नत्वेन मायया असत्त्वादवस्तुत्वाच्च तस्य मायाऽपि तदात्मिकैवास्ति भिन्नत्वेन वस्त्वन्तरत्वे सति श्रुतिविरुद्धो द्वैतापत्तिदोषः । हाटकादौ भूषणकल्पनादिवद् ब्रह्मणि माया कल्पिताऽस्ति । अतो मायैव जगत उपादानं ब्रह्मैव वाऽस्योपादानमित्यनर्थान्तरं बोध्यम् तस्य भगवतो मायाकल्पि-

ताकाशवाय्वाद्यात्मकं ब्रह्माधिष्ठितमिदं सर्वं जगदस्ति ॥ १० ॥

भावार्थः—(मायान्तु प्रकृतिं विद्यात्) माया को ही प्रकृति नाम जगत् का उपादान कारण जानो और (मायिनं तु महेश्वरम्) सृष्टि स्थिति और प्रलय तीनों काल में माया नामक प्रकृति को अपने अधिकार में रखने वाले माया के स्वामी असीम ऐश्वर्य युक्त अनन्त व्यापक ईश्वर को मायी जानो (तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्) उस चिदात्मक मायी ईश्वर के माया सम्बन्धी माया के कारण कल्पित हुए स्थूल सूक्ष्म अवयवों से यह सब चौदह भुवन स्वरूप जगत् व्याप्त हो रहा है ॥

भा०—ब्रह्मसे भिन्न मायाका सद्भाव न होने तथा वस्त्वन्तर न होने से उस परमेश्वर की माया भी उसी का एक रूप है। क्योंकि भिन्न मानने से वस्त्वन्तर सिद्ध हो जाने पर वेद के अटल सिद्धान्त से विरुद्ध द्वैतापत्ति दोष आवेगा इस से सुवर्णादि में भूषणादि के कल्पना मात्र होने के तुल्य ब्रह्म में माया भी कल्पनामात्र है। इस से माया ही जगत् का उपादान कारण है या ब्रह्म ही इस सब जगत् का उपादान कारण है ये दोनो बातें एक ही हैं। उस भगवान् की माया से कल्पित आकाश वायु आदि अवयवात्मक ब्रह्म से अधिष्ठित यह सब जगत् है ॥ १० ॥

यो योनिंयोनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम्। तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ११॥

अ०—मायाकार्याखिलयोन्यधिष्ठात्रा वियदादिकार्योत्पादकेन सर्वाधिष्ठातृत्वोपलक्षितसच्चिदानन्दात्मना ब्रह्माऽहमस्मीत्येकत्वज्ञानान्मोक्षं दर्शयति—यएकोऽद्वैतोदेवोमायाविमुक्त आनन्दैकरसः परमेश्वरो योनिंयोनिं मूलोपादानमायायाः सर्वानवान्तरभेदानधितिष्ठति सचान्तर्यामिरूपेणाप्रकृतिभेदेषु सत्तास्फूर्त्तिमाविर्भावयन्नधिष्ठाताभवति यस्मिन्नीशे प्रलयावसरे सर्वमिदं जगत् समेति लीयते सर्गकाले चाकाशादिरूपेण विविधतामेति नाना भवति जीवात्मा तमीशानं सर्वनियन्तारं मोक्षरूपसर्वोत्तमफलप्रदमीड्यं वेदादिना स्तुत्यं देवं निचाय्य ब्रह्माऽहमस्मीस्ति निश्चित्येमां स्थालीपुलाकन्यायेन सुषुप्तादौ प्रत्यक्षेणानुभूतां शान्तिमत्यन्तमेति प्राप्नोति ॥

भा०—सर्वस्य स्थूलसूक्ष्मस्य योऽध्यक्षः सर्गस्थितिलयहेतुः सर्वनियन्ता सर्वरक्षकः सर्वोपरि सुखप्रदः सर्वथा सर्वदा च शान्तिमयस्तस्य प्रत्यगात्मनो देहादिष्वात्मभावं विहाय चिदात्मस्वरूपबोधएव निरतिशयशान्तिप्राप्तेः प्राणिनः प्रधानं कारणमस्ति ॥ ११ ॥

भावार्थः—माया से उत्पन्न सब देव मनुष्यादि योनियों के अधिष्ठाता आकाशादि कार्य के उत्पादक सर्वाधिष्ठाता होने से उपलक्षित सच्चिदानन्द रूप आत्मा के साथ मैं ब्रह्म हूं इस प्रकार का एकत्व ज्ञान होने से मोक्ष होना ग्यारहवें मन्त्र से दिखा (य एको योनिंयोनिमधितिष्ठति) जो एक अद्वैत देव माया से विमुक्त आनन्द रूप परमेश्वर माया नामक मूल उपादान के सब अवान्तर भेदों का अधिष्ठाता है अर्थात् वह अन्तर्यामि रूप से प्रकृति के अवान्तर भेदों में उत्पादनादि स्फूर्ति प्रकट करता हुआ अधिष्ठाता होता है (यस्मिन्निदं स च विचैति सर्वम्) जिस ईश्वर में प्रलय के समय यह सब जगत् लीन होता और उत्पत्ति के समय आकाशादि रूप से नाना प्रकार के भेदों वाला प्रकट होता (तमीशान वरदमीड्यं देवम्) उस सर्वनियन्ता मोक्ष रूप सर्वोत्तम फल देने वाले वेदादि शास्त्रों से स्तुतिके योग्य ईश्वर देव का मैं ही ब्रह्म ईशानादि रूप हूं (निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति) निश्चय करके स्थाणीपुरुषकन्याय से निद्रादि के समय प्रत्यक्ष अनुभव की हुई इस अत्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है जिस में दुःख उपद्रव वा विघ्नों का लेशमात्र भी नहीं है।

भा०—सब स्थूल सूक्ष्म जगत् का जो स्वामी सृष्टि स्थिति तथा प्रलय का कारण सर्वनियन्ता, सर्वरक्षक, सर्वोपरि सुखदाता सब काल में और सब प्रकार से शान्तिस्वरूप है शरीरादि में आत्मभावना न करके उस अपने वास्तविक स्वरूप का बोध ही जीव को अत्यन्त शान्ति मिलने का प्रधान कारण है ॥ ११ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥

अ०—अखण्डिततत्त्वज्ञानाय प्रार्थनामाह-यो देवानां स्थूलसूक्ष्माग्न्यादितत्त्वानां तत्तदभिमानिदेवानां च प्रभव उत्पत्तिस्थानमुद्भवो नियमेन तैः कार्यसाधको विश्वस्याधिपती रुद्रः शास्ता महर्षिः सर्वज्ञः सर्वविद्यानिधानस्य वेदस्य प्रकाशकोऽस्ति। जायमानं सर्गारम्भे विधातृरूपेण प्रादुर्भूयमानं हिरण्यगर्भनामरूपात्मकं परमेश्वरं हे जनाः! पश्यत ज्ञानचक्षुर्भ्यामितिशेषः। स सर्वज्ञः शुभया धर्मानुगामिन्या कल्याणकारिण्या रजस्तमोक्लेशमलापेतया तत्त्वज्ञानरूपया बुद्ध्या नोऽस्मान् संयुनक्तु=इति प्रार्थयामः ॥

भा०—तस्येश्वरस्य गुणकर्मस्वभावानामालोचनेनैकाग्रचेतसा स्तुतिप्रार्थनाभ्यां चान्योपायापेक्षयाऽऽधिक्येन शान्तिमयं सुखं मनुष्येणाप्तुं शक्यते ॥ १२ ॥

भावार्थः—अखिलहत तत्व ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रार्थना कहते हैं (यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च) जो स्थूल सूक्ष्म अग्न्यादि तत्वों का तथा उन २ अग्न्यादि के अभिमानी देवों का उत्पादक और नियम के साथ उन २ से कार्य लेने वाला (विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः) सब का स्वामी सब का शासक सर्वज्ञ नाम सब विद्याओं के आधार वेदका प्रकाशक (हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्) सृष्टि के आरम्भ में सब के उत्पादनार्थ विधाता रूप से प्रकट होने वाले हिरण्य-गर्भ नाम रूपात्मक परमेश्वर को हे मनुष्यो ! ज्ञानदृष्टि से देखो (स शुभया बुद्ध्या नः संयुनक्तु) वह ईश्वर शुभ कल्याण कारिणी धर्मानुगामिनी रजोगुण तमोगुण से लेश मात्र भी उन से रहित तत्वज्ञान रूप बुद्धि से हम को संयुक्त करे ऐसी हम प्रार्थना करते हैं।

भा०—उस ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों के आलोचन द्वारा एकाग्रचित्तसे स्तुति प्रार्थना करके जैसा अधिक शान्ति रूप सुख मनुष्य को प्राप्त हो सकता है वैसा अन्य उपाय से नहीं ॥ १२ ॥

यो देवानामधिपो यस्मिं-ल्लोका अधिश्रिताः। य ईशोऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

अ०—यो देवानाममितशक्तिमतां ब्रह्मा-दिदेवानां तदवान्तरभेदानां चाधिपः स्वामी यस्मिन्नीश्वरे आधारे भूरादयो लोका अधि-

उपरिश्रिता यदाधारेणावस्थिता अध्यस्ता लोकनामरूपैः प्रतीयन्ते । यएव परमेश्वरस्तत्तल्लोकस्थद्विपदो मनुष्यादेश्चतुष्पदः पश्वादेश्चेश ईष्टे तान् सर्वान्स्वाधीनान् करोति तस्मै कस्मै काय सुखानन्दमयाय [स्मैभावश्छान्दसः] देवाय हविषा चरुपुरोडाशादियज्ञसाधनैर्विधेम परिचरेम सेवेमहि । अत्र "लोपस्तआत्मनेपदेषु,, इति सूत्रेण छन्दोवन्मत्वा ईष्ट इति तलोपः । अधीगर्थदयेशां कर्मणीति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी च ॥

भा०—चरुपुरोडाशादियागसाधनैस्तस्य यजनेन स्तुतिप्रार्थनादिकरणेन स्तुत्यादौ वागादेर्विशेषनियोगेन चेश्वराभिमुखतया मनुष्येण शान्त्याप्रय उद्योगः कार्यः ॥ १३ ॥

भाषार्थः-(यो देवानामधिपः) जो अतुल शक्ति वाले ब्रह्मादि देवों तथा उन के अवान्तर भेद रूप देवों को वशीभूत रखने वाला (यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः) जिस सर्वाधार ईश्वर के बीच भूरादि लोक जिस के सहारे से ठहरे हुए हैं वा जिस में भूरादि लोक अध्यस्त हैं, अर्थात् भूरादि लोक नाम रूप से प्रतीत हो (य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः) और जो परमेश्वर उस २ भूः, भुवर् आदि लोक में रहते इस मनुष्यादि दो पग वाले और पश्वादि चार पग वाले प्राणिमात्र को स्वाधीन रखता है (कस्मै देवाय हविषा विधेम-)

उस सुख वा आनन्द स्वरूप देव को हम लोग अपने चरूपुरोडाशादि यज्ञ के साधनों से पूजा करें।

भा०—चरू पुरोडाशादि यज्ञ के साधनों से उसका पूजन करने द्वारा तथा स्तुति प्रार्थनादि करके अर्थात् वाणी आदि को अन्य कामों से रोककर स्तुति आदि में ही अधिक लगा कर ईश्वर की ओर तत्पर रहते हुए मनुष्य को शान्ति प्राप्त करने के लिये उद्योग करना चाहिये ॥ १३ ॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति१४॥

अ०—सूक्ष्मतरप्रकृतिपरमाण्वादेरव्यक्तादप्यतिशयितं सूक्ष्मतमं सूक्ष्मत्वस्य काष्ठां प्राप्तं कलिलस्यागाधस्यानन्तस्य गहनस्य मोहावृतस्य जगतो मध्येऽन्तःसाक्षिरूपेण निरञ्जनतयावस्थितमतएव विश्वस्य सर्वस्य स्रष्टारमनेकरूपं तत्तद्वस्तुनि तत्तन्नाम्ना रूपेण च विद्यमानं विश्वस्यैकमेव परिवेष्टितारमनन्तं शिवमानन्दमयं परमात्मानं ज्ञात्वाऽत्यन्तं शान्तिमेति ॥

भा०—निरतिशयसूक्ष्मत्वानन्तत्वनिर्विकारित्वादिकारणादेव कल्मषागारे जगति

सर्ववस्तुषु वर्त्तमानः सर्वस्य स्रष्टा सन्नपि परमेश्वरो वस्तुदोषैर्न लिप्यते तस्मादेव तस्य निरतिशयशान्तस्य ज्ञानं जीवस्यात्यन्तशान्तिप्राप्तेः कारणं विज्ञेयम् ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(सूक्ष्मातिसूक्ष्म कलिलस्य मध्ये) सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म प्रकृति परमाण्वादि नामक अव्यक्त से भी परे [बारीकी की हद्द को पहुंचे] मोह रूप अगाध अनन्त अविद्या से उपे महाभयङ्कर संसार समुद्र के बीच साक्षीरूपसे वर्त्तमान निष्कलङ्क [बेदाग] रूप से अवस्थित इसी कारण (विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्) सब के उत्पादक तथा उस २ वस्तु में विद्यमान (विश्वस्य परिवेष्टितारमेकं शिवं ज्ञात्वा) सब संसार को अपने भीतर रखने वाले एक ही आनन्द स्वरूप शिव को जानकर (अत्यन्तं शान्तिमेति) जीव अत्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है ।

भा०—सूक्ष्मता अनन्तता और निर्विकारीपन के असीम होने से ही पापों के आधार जगत् में तथा जगत्के प्रत्येक पदार्थों में वर्त्तमान रहता और सब को उत्पन्न करता हुआ भी ईश्वर संसार के दोषों से दूषित नहीं होता इसी कारण उस सर्वोपरि अत्यन्त शान्तस्वरूपका जानना जीवको अत्यन्त शान्ति प्राप्त होने का कारण जानो ॥ १४ ॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देव-

ताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशां-श्छिनत्ति ॥ १५ ॥

अ०—सएव स्थितिकाले भुवनस्य चराचरस्य गोप्ता रक्षिता विश्वस्याधिपः स्वामी ब्रह्मादिस्थावरावधि सर्वभूतेषु गूढोऽदृश्यउद्भूतानुद्भूतचिदात्मनाऽवस्थितो ब्रह्मर्षयो ब्रह्मत्वप्रधाना ज्ञानिनो देवता इन्द्रादयः क्षत्रत्वप्रधाना यस्मिन् युक्ता संगच्छन्ते यमाप्नुवन्ति तमेवंभूतं ज्ञात्वा जीवो मृत्युपाशान् छिनत्ति तादात्म्यमाप्नोति ॥

भा०—अग्नौ शीतनिवारणपाचनादिशक्तिरस्तीति ज्ञात्वैव तथा कुर्वाणस्तत्फलं लभते। एवमीश्वरं स्वात्मनाऽभेदेन तत्तच्छक्तिमन्तं ज्ञात्वैव जीवो मरणादिजन्यापरिमितदुःखान्मुक्तो भवितुं शक्नोति ॥ १५ ॥

भावार्थ.—(सएव काले भुवनस्य गोप्ता) वही संसार के स्थिति काल में सब चराचर का रक्षक विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः) सब का स्वामी ब्रह्मादि स्थावर पर्यन्त सब में अदृश्य हो के प्रकट वा अप्रकट चिदात्म रूप से अवस्थित (ब्रह्मर्षयो देवताश्च यस्मिन् युक्ताः) तपस्वी ज्ञानी ब्रह्मर्षि ब्राह्मण और क्षत्रत्व प्रधान इन्द्रादि देव जिस से मेल करते जिस को प्राप्त होते वा जिस में लीन हैं (तमेवं ज्ञात्वा

मृत्युपाशांश्छिनत्ति) उस को ऐसा ही जानकर जीव मृत्यु की फांसियों को काट डालता और उसी का स्वरूप हो जाता है ।

भा०—शीत निवारण और पकाने आदि की शक्ति अग्नि में है ऐसा जान कर ही उपाय करता हुआ पुरुष उस उस फल को जैसे प्राप्त कर पाता है । इसी प्रकार ईश्वरको अपने से अभिन्न वैसी २ शक्ति वाला जानकर ही जीव मरने आदि में होने वाले अपरिमित दुःखसे छूट सकता है ॥ १५॥

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा
देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १६ ॥

अ०—प्रतपनानन्तरं ग्रीष्मादिकाले घृतस्योपरि यत्साररूपं मण्डमतिसूक्ष्मं दृश्यते । तद्वत्साराणामपि सारं सारवस्तुवन्मुमुक्षूणामानन्दप्रदं सर्वेषु जायमानेषु गूढं शिवं ज्ञात्वा तथैकं विश्वस्य परिवेष्टितारं देवं ज्ञात्वा जीवः सर्वपाशैरखिलदुःखहेतुबन्धनैर्मुच्यते । अत्र ज्ञात्वेत्यस्यावृत्तिर्दार्ढ्यार्था ज्ञात्वैव सर्वपाशैर्मुच्यते नान्यथेति ॥

भा०—घृतादिसारवस्तूपादानायैव सर्वो लोकस्तदाप्त्या सुखलाभं मन्यमानोऽनिशं

यतते। यश्च साराणामप्यसीमः सारस्तं प्रायेण न जानन्ति ये केऽपि कदाचित्तादृशं सारतायाः काष्ठां प्राप्तमीशं कथमपि विदन्ति ते तादृशमेवानन्तं सुखमश्नुवते। एकपदेनजीवाभिन्नस्य परेशस्यात्यन्तात्यन्तसूक्ष्मत्वबोधने नानन्दातिशयवत्त्वं निर्दोषत्वं सर्वप्राणिषु चित्स्वरूपेणावस्थानत्वं सर्वस्य सत्तादिप्रदतया व्यापित्वं च सम्यग्जानानः प्राण्यखिलबन्धनाद्विमुच्यते ॥ १६ ॥

भाषार्थः—(घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मम्) तपाये छाने हुए घी के ऊपर पड़ने वाली सार रूप अति सूक्ष्म मलाई के तुल्य (सर्वं भूतेषु गूढं शिवं ज्ञात्वा) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में गुप्त सार वस्तुओं के तुल्य मुमुक्षुओं को आनन्द देने वाले शिव को जानकर (विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं देवं ज्ञात्वा) और सब ब्रह्माण्ड के चारों ओर लपेटकर सब को अपने भीतर रखने वाले देव को जानके ही (सर्व पाशैः) जीव दुःख के सम्पूर्ण बन्धनों से (मुच्यते) छूट जाता है। यहां ज्ञात्वा पद दृढ़ता के लिये दोबार पढ़ा है कि जान के ही मोह की फांसों से छूट सकता है अन्यथा नहीं ॥

भा०—घृतादि वा चांदी सुवर्णादि सार वस्तुओं का ग्रहण करने के लिये ही सब लोग उस की प्राप्ति से सुख मानते हुए सदा उपाय करते हैं परन्तु जो सारोंका भी सार, सारपनकी जिसमें पराकाष्ठा है उसको प्रायः लोग नहीं जानते और जो कोई जब कभी जिस किसी प्रकार उस सारपनकी

अन्तिम दशा ईश्वर को जान लेते हैं वे उस की अपेक्षा अन्य असार वस्तुओं का त्याग कर वैसे ही असीम सुख को प्राप्त हो जाते हैं इस ग्रन्थ के अनेक मन्त्रों में कई वार कहे (सर्वभूतेषु गूढम्) इत्यादि पद उस २ अभिप्राय को दृढ़ करने के लिये हैं इस मन्त्र में एक पद से जताया है कि जीव से अभिन्न परमेश्वर की सब से अति सूक्ष्मता का बोध होने से उस की सत्यानन्द स्वरूपता निर्दोषता सब प्राणियों में चैतन्य रूप से स्थिरता और सब पदार्थों को सत्तादि देने वाला होने से उस की व्यापकता को जानता हुआ ही प्राणी सब बन्धन के हेतु दुःखों से छूट सकता है ॥ १६ ॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य-
एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥

अ०—विश्वं सर्वं महदादिकार्यं कर्मक्रियमाणमस्य विश्वकर्मा महांश्चासावात्मा सर्वव्यापी जनानां हृदये सदा सन्निविष्टो जलाद्युपाधिषु सूर्यादिप्रतिबिम्बवदत्रस्थितः । मनीषा बुद्धिरूपेण सूक्ष्मातिशुद्धहृदयस्थमननरूपात्मानात्मविवेकज्ञानेनाभिक्लृप्तोऽभिव्यज्यमान एष प्रकृतो देवोऽस्ति ये साधनचतुष्टयसम्पन्ना विरक्ता जना एतत्तत्त्वमस्यादिवाक्य-

प्रतिपाद्यमखण्डैकरसमेकमात्मतत्त्वं विदुस्तेऽमृता मुक्ता भवन्ति । अत्र मनीषेति तृतीयैकवचनविभक्तेः सुपामित्याकारादेशः ॥

भा०—सर्वोत्पादकः सर्वान्तर्यामी सर्वसुखहेतुरीश्वरोऽस्मदन्तःकरणएव सदाऽवस्थितस्तदेव वास्तवं मम स्वरूपं नाहं शरीरेन्द्रियान्तःकरणादिरूप इति मत्वा विविक्तावकाशे निरुद्धैकाग्रचेतसा ये तं ज्ञातुं यतन्ते ते तद्बोधेन दुःखान्मुच्यन्ते ॥ १७ ॥

भाषार्थः—(विश्वकर्मा महात्मा जनानां हृदये सदा संनिविष्टः) माया के सम्बन्ध से महदादि सब कार्य जगत् को रचने वाला सर्वत्र व्यापक जलादि उपाधियों में सूर्यादि के प्रतिबिम्ब के समान मनुष्यों के हृदय में सदा ही विद्यमान (मनीषा हृदा मनसाऽभिक्लृप्तः) सूक्ष्म अति शुद्ध हृदयस्थ मननरूप आत्मा अनात्मा के विवेक बुद्धि वा ज्ञान से प्रकट ज्ञात होने वाला (एष देवः) यह प्रकृत देव ईश्वर है (यएतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) शमादि चार साधनोंसे युक्त तथा विरक्त जो मनुष्य तत्त्वमसि० इत्यादि प्रमाण प्रतिपाद्य अखण्ड एक रस अपने से अभिन्न एक आत्म तत्त्व को जानते हैं वे मुक्त हो जाते हैं ॥

भा०—सब का उत्पादक-सब का अन्तर्यामी सब सुखों का हेतु ईश्वर हमारे अन्तःकरण में ही सदा अवस्थित है, वही हमारा वास्तविक स्वरूप है । किन्तु शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप हम नहीं हैं ऐसा मान कर रोके हुए एकाग्र

चित्त से एकान्त प्रदेश में जो लोग उस को जानने का यत्न करते हैं वे उस ईश्वर को जानकर शान्ति को प्राप्त हुए दुःख से छूट जाते हैं ॥ १७ ॥

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्नसन्न चासच्छिवएव केवलः ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा
तस्मात्प्रसृता पुराणी ॥ १८ ॥

अ०—यदा निर्बीजासंप्रज्ञातसमाधिकाले तमः कार्याविद्यादिक्लेशजन्यदुर्निवार्यसूक्ष्मवासनानामप्यभावस्तत्तदा न दिवा दिनमिति, नच रात्रिरिति, नच जगत्सद् विद्यतइति, नच मच्छरीरं मदीयाः पदार्था वा न सन्ति सर्वाभावइति, कोपि चेतोवृत्तिरूपः प्रत्ययो न भवत्यपितु स्वरूपशून्येनेव ध्येयाकारनिर्भासेन तत्स्थतदञ्जनतायाः समापत्तेः पराकाष्ठां प्राप्तेन तेन कल्याणमयएकः परमात्मैवदृश्यते। अर्थान्निवातस्थप्रदीपज्योतिरिव स्वीये वास्तविकपरमात्मस्वरूपेऽवतिष्ठते। तच्चात्मतत्त्वमक्षरं स्वभावेनैवाविनश्वरं सवितुरुदयकालीनसूर्यादप्याधिक्येन शोभमानं प्र-

काशमयं तस्यापि कारणत्वात् । तस्मादेव च पुराणी सनातनी प्रज्ञा प्रकृष्टसर्वोत्तमज्ञानसाधिका वेदवाणी शैलान्नदीवज्जगति प्रसृता॥

भा०—"समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्,, । तद्वाचा वक्तुं न केनापि शक्यतेऽतस्तादृशालौकिकाद्भुतसर्वोत्कृष्टसुखानुभवाय योगसमाधिमन्तरेण नान्यः कोऽप्युपायइति मत्वा स्वीयपरमात्मस्वरूपेऽवस्थित्याऽनुभूयमानानन्दावाप्तये योगाभ्यासस्तल्लिप्सुना प्रयत्नात्कार्यइति ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिः) जब निर्बीज वा असंप्रज्ञात नामक समाधिस्थ हो जाने के समय तमोगुण के कार्य अविद्यादि क्लेश तथा अति कठिनता से निवृत्त होने वाली अविद्यादि की सूक्ष्म वासनाओं का भी अभाव हो जाता है तब न दिन है ऐसा कह सकते न रात्रि (न सन्नचासच्छिवएव केवलः) जगत् विद्यमान है वा मैं विद्यमान हूं ऐसा भी नही कहा जाता, मेरा शरीर वा मेरे पदार्थ तथा अन्य मनुष्यादि नहीं हैं ऐसा भी भान नहीं होता किन्तु किसी प्रकार की भी चित्त की वृत्ति उस समय नहीं होती अपने स्वरूप से शून्य से हुए केवल ध्येय के आकार में लगे तत्स्थ उसी की ओर झुकावट और तन्मय होना रूप समापत्ति की अन्तिम सीमा को प्राप्त जीवात्मा कल्याणमय एक परमात्मा को ही दीखने लगता है अर्थात् 'निवात स्थान के दीप ज्योति के तुल्य अपने वास्तविक परमात्म

स्वरूप में अवस्थित हो जाता है (तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यम्) वह आत्मतत्त्व स्वभाव से ही अविनाशी उदय कालके सूर्यसे अधिक शुद्ध प्रकाशस्वरूप तेजोमय है क्योंकि वह सूर्यादि प्रकाशों का भी प्रकाशक है (तस्मात्पुराणी प्रज्ञा प्रसृता) उसी ईश्वर से सर्वोत्तम ज्ञान की हेतु सनातन वेदवाणी पर्वत से निकल के नदी के समान जगत् में फैली है ॥

भा०—"समाधिद्वारा धोकर शुद्ध किये चित्तको परमात्मा में लगाने से जो सुख होता है वह वाणी से कहने में नहीं आता,, इससे इस तथा अन्य उपनिषदों में कहे अनुसार वैसे अलौकिक सर्वोत्तम अद्भुत सुख का अनुभव करने के लिये योग समाधिको छोड़ के अन्य कोई उपाय नहीं है ऐसा मानकर उस अपने परमात्म स्वरूप में अवस्थित होने से प्रतीत होने वाले आनन्द का स्वाद चाहने वाला पुरुष प्रयत्न के साथ योगाभ्यास का अधिमात्रतीव्रसंवेग से उपाय करे ॥ १८ ॥

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् । न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥१९॥

अ०—एनमुक्तं सर्वस्माद्वरेण्यं परमात्मानमपरिच्छिन्ननिरंशनिरवयवत्वादिनोर्ध्वं मध्ये तिर्यञ्चं वा न कोऽपि परिजग्रभत्परिग्रहीतुं शक्नोति । न केनापि हस्ताद्यवयवेन स गृह्यते । यस्यैकस्याखिलदिग्देशकालेष्वप-

रिच्छिन्नं नामाभिधानं महद् यशोऽस्ति। सर्वदिग्देशकालेषु यएकएवेश्वरः कैरपि स्वस्वभाषानामभिर्गीयते तस्य प्रतिमा उपमा कापि नास्ति ययेदृशइति केनापि निर्दिश्येत॥

भा०—परिच्छिन्नं वस्तु ग्रहीतुं निरोद्धुं वा शक्यते परेशस्तु सर्वदिग्देशकालेष्वपरिच्छिन्नोऽस्ति तादृशाखण्डैकरसो द्वितीयः कोपि नास्ति येनोपमीयेत। भगवतः पूजार्थं प्रतिमानिर्माणमवतारविग्रहाणां क्रियते नतु दिगाद्यनवच्छिन्नस्याखण्डस्य, भगवतो नाम जपो महद्यशः करोति ॥ १९ ॥

भाषार्थः—(नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्) अंश तथा अवयवोंसे रहित होनेसे अपरिच्छिन्न सबसे उत्तम परमात्मा को ऊपर नीचे वा बीचमें कहीं भी कोई हाथ आदि से पकड़ नहीं सकता (यस्य नाम महद्यशः) जिस एक ईश्वर का सब दिशा देश और कालों में नाम के प्रचार द्वारा यश फैला है अर्थात् सब देशों और कालों में अपनी २ भाषा के किन्हीं २ नामों द्वारा सब मनुष्य तीनों काल में अपने कल्याणार्थ एक ही ईश्वर को पुकारते गाते हैं (तस्य प्रतिमा नास्ति) उस की कोई प्रतिमा नाम उपमा नहीं है जिस की समता द्वारा जताया जाय कि ईश्वर ऐसा है।

भा०—परिच्छिन्न वस्तु को कोई पकड़ वा रोक सकता है और परमेश्वर सब दिशा देश और कालों में आकाशवत् अखण्ड अपरिच्छिन्न है। वैसा अखण्ड एक रस द्वितीय

कोई पदार्थ नहीं है जिस की तुल्यता दिखायी जावे कि ईश्वर ऐसा है। भगवान् की पूजा के लिये जो प्रतिमा बनायी जाती है सो अवतार शरीरों की बनती हैं किन्तु दिगादि में एक रस अखण्ड व्याप्त ईश्वर की प्रतिमा नहीं बनती। भगवत् का नाम अपना महती कीर्त्ति करने वाला है॥ १९॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं
विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २०॥

अ०—अस्य निर्गुणस्य प्रकृतेश्वरस्य रूपं संदृशे मनुष्याणां समक्षे दृग्गोचरे न कदापि क्वापि तिष्ठति। अतएव कश्चन कोऽप्येनं चक्षुषा न साक्षात्पश्यति। किन्तु हृदा हृदयस्थेनाविषयासक्तेन स्वरूपावस्थेनैकाग्रेण मनसा सूक्ष्मशुद्धविचारेण हृदिस्थमेव स्वरूपाभेदेन य एनं ज्ञातु प्रवर्त्तते स एव पश्यति हार्दानुभवेन साक्षात्करोति। एवं ये तं विदुर्जानन्ति तेऽमृता मरणादिजन्यापारदुःखरहिताः प्राप्तमुक्तदशा भवन्ति॥

भा०—अरूपस्य वास्तवेन निर्गुणस्य निराकारस्वरूपस्य परमात्मनः कोऽपि दर्शनं

कर्त्तुं न शक्नोति । तस्मादीश्वरः कोऽपि नास्तीति मत्वा मनुष्या नास्तिका न स्युरेतदर्थं भगवानसुरराक्षसादिविध्वंसायास्तिकभक्तानां रक्षणाय धर्मस्य संस्थापनाय च युगेयुगे यथावसरं बहुविधान् स्वीयान् मायाकल्पितान् मायोपाधिकान् मानुषादिशरीरविग्रहानाविर्भाव्य दृष्टिपथमायाति । तानि च रूपाणि मायोपाधिनैव दृश्यन्ते नतु वास्तविकानीति बोध्यम्. तस्माद् वास्तवेनारूपोऽदृश्योऽपि मायोपाधिना रूपवान् दर्शनीयश्च भवति ॥२०॥

भाषार्थः—(अस्य रूपं संदृशे न तिष्ठति) इस निर्गुण प्रकृत ईश्वर का रूप गुण मनुष्योंके सामने कहीं कभी नहीं ठहरता इसी से (एनं कश्चन चक्षुषा न पश्यति) इस निर्गुण को कोई पुरुष आंख से साक्षात् नहीं देख सकता किन्तु (हृदा मनसा हृदिस्थं य एनम्) विषयों की ओर न झुके वा न फंसे, स्वरूप में अवस्थित, एकाग्र, शुद्ध सूक्ष्म विचार से अपने हृदय में ही स्थित इस ईश्वर को अपने स्वरूप से अभिन्न जानने के लिये जो चेष्टा करता है वही उस को हृदय के अनुभव से साक्षात् कर पाता (एवं विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो लोग इस उक्त प्रकार से उस को जान लेते वे मरणादि के अपार दुःख से छूट जाते हैं।

भा०—वास्तव में रूप रहित निर्गुण निराकार अखण्ड स्वरूप ईश्वर है इसी कारण चर्म चक्षु से उस का दर्शन कोई नहीं कर सकता इस दशामें ईश्वर कोई होता तो कहीं कभी

दीखता न ? ऐसा मान कर मनुष्य नास्तिक न हो जांय इस कारण भगवान् असुर राक्षसादि स्वभाव वाले दुष्ट प्राणियों का विध्वंस करने आस्तिक भक्तजनों की रक्षा करने और धर्म की फिर २ स्थापना करने के लिये यथावसर प्रत्येक युग में माया कल्पित मायोपाधिक अपने बहुविध मनुष्यादि रूप वाले अवतार शरीरोंको प्रकट करके मनुष्यों के दृष्टिगोचर होते हैं । परमात्माके अवतार रूप मायात्मक उपाधियों से ही देखने में आते हैं किन्तु वे रूप वास्तविक उस के नहीं हैं । तिस से सिद्ध हुआ कि ईश्वर वास्तव में अरूप तथा अदृश्य होने पर भी मायोपाधि से कृत्रिम रूप धारण करके देखने योग्य भी होता है ॥ २० ॥

अजातइत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते । रुद्र ! यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ २१ ॥

अ०—ईश्वरप्रसादादेवेष्टप्राप्तिरनिष्टहानं सुकरमिति मत्वा मन्त्रद्वयेन प्रार्थनोच्यते--हे रुद्र ! सर्वेषां शास्तः ? इति यस्मात्त्वमजातो न जायसे तत्सहचरितदुःखव्याधिजराक्षुत्पिपासादिभिश्च न युज्यसे तस्मादेवं मत्वा कश्चिद्भीरुः संसारार्णवमज्जनभयाद्भीतस्त्वां प्रतिपद्यते तारकस्य तव शरणं गच्छति न सर्वः । अतो हे रुद्र ! यत्ते तव दक्षिणं प्रधा-

नमाभिमुख्यं कृपाकटाक्षेण स्वभक्तान्वीक्षण तेन मां मुमुक्षुं जिज्ञासुं नित्यं सर्वदा पाहि पालयेति प्रार्थये यद्वा दक्षिणं सोत्साहं प्रवीणत्वगम्भीरत्वयुक्त ध्यातं मुखं यद्वा दक्षिणदिशिभवं यमाभिधं मुखं तेन मुखेन मां शरणागतं पाहि रक्ष ॥

भा०—लोके धनाद्यैश्वर्येण स्वतउत्कृष्टं सुखं भुञ्जानान् दृष्ट्वैव वोतकृष्टसुखाप्तये जनाः प्रयतन्ते तथैवेहापि सर्वदुःखाद्विमुक्तस्य प्रार्थनोपासनाश्रयएव दुःखान्मुक्तेः प्रधानं कारणं नहि कोऽपि दुःखालयाश्रितो लोकेऽपि सुखमाप्तुमर्हति ॥ २१ ॥

भाषार्थः—अब ईश्वर की कृपा वा प्रसन्नता से ही इष्ट सुख की प्राप्ति और अनिष्ट की हानि सुगमता से हो सकती है ऐसा मान कर दो मन्त्रों से प्रार्थना कही गई है (रुद्र। अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते) हे सब के शासक रुद्र नाम रूप ईश्वर जिस कारण तुम जन्म लेकर व्याधि जरा क्षुधा पिपासा और मरणादि के दुःखों में नहीं पड़ते सदा शुद्ध एक रस रहते हो इस कारण तुम को ऐसा ही जान वा मान के संसारसागर में डूबने वा गोता खाने से डरा हुआ मेरा जैसा मनुष्य तुमको प्राप्त हो पाता है अर्थात् पार करने वाले तुम्हारे शरण को गहता है किन्तु सब नहीं। इस से हे ईश्वर! (यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां नित्यं पाहि) जो भक्त पर तुम्हारी प्रधान कृपा दृष्टि है उस से मुझ जिज्ञासु

मुमुक्षुकी नित्य सदाही रक्षा करो यही प्रार्थना करता हूं अथवा प्रसन्नता गम्भीरता युक्त ध्यान किया जो तुम्हारा उत्साह पूरित मुख है, अथवा दक्षिण दिशा में विद्यमान यमराज स्वरूप जो तुम्हारा मुख है उससे मुझ शरणागतकी रक्षा करो।

भा०-संसारी मनुष्य लोकमें धनादि ऐश्वर्य के अधिक होने से अपनी अपेक्षा उत्तम सुख भोगने वाले मनुष्यों को सुन देख वा जान कर ही उत्तम सुख प्राप्तिके लिये धनादिके उपार्जन में श्रम करते हैं। वैसे ही यहां भी सब दुःखों से मुक्त ईश्वर की प्रार्थना उपासना का आश्रय लेना ही दुःख से मुक्त होने का प्रधान कारण है। क्योंकि जगत् में भी कोई मनुष्य दुःख के शरणागत रहता हुआ सुख प्राप्त नहीं कर पाता ॥ २१ ॥

मानस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र ! भामितो वधीर्हविष्मन्तः सद-मित्त्वा हवामहे ॥ २॥

अ०-हे रुद्र ! सर्वत्र सीदसि तिष्ठसि सदः पचाद्यच्। तादृशं सर्ववस्तुष्ववस्थितमिदेव त्वा त्वां हविष्मन्तो हव्यादिसाधनैर्होमादिकं कुर्वाणा वयं यतो हवामहे आह्वयामस्तस्मात्त्वं न नस्तोके पुत्रे, तनये पौत्रे, न आयुषि, नो

गोषु नोऽश्वेषु च मा रीरिषो रोषं क्रोधं मा कुरु तत्र रोषेण तेषां विनाशो माभूत । तथा मत्कुलापराधेन भामितः क्रोधितो नो वीरान् पराक्रमशीलान् भृत्यादीन्मा वधीर्नो हिंसय ।

भा०-ईश्वरभक्तानां पुत्रादयोऽकाले नैव म्रियन्ते । नास्ति यस्मात् बलिष्ठो, यत्समो वा कश्चित्प्रभुर्नास्ति न तमनादृत्य कोऽपि कमपि मारयितुं प्रभवति । अतएवोक्तम्-मृत्युर्धावति पञ्चमइति । प्रधानमृत्युदुःखवारणप्रार्थनेऽन्यान्यल्पानि दुःखान्युपलक्षणेन तदन्तर्भूतत्वादेव दूरीभवितुमर्हन्ति । दुःखस्यानिष्टस्य हानमेव प्राधान्येनेष्टावाप्तिर्बोध्या । ज्ञानेन मरणादिभयनिवृत्तिरेव प्रार्थनायाः प्रधानं प्रयोजनमल्पायुषि पुत्रादीनां मरणं न स्यादिति तु गौण प्रार्थनाफलं बोध्यम् । अयं चान्तिमो मन्त्रो यजुषि अ० १६ षोडशः पठित. ॥ २२ ॥

भाषार्थः-(रुद्र सदमित्त्वा हविष्मन्तो हवामहे) हे रुद्र सब वस्तुओं में व्यापक अवस्थित ईश्वर ! तुम को आज्यपुरोडाशादि हविष्यादि साधनों से होम करते हुए हम लोग जिस कारण बुलाते पुकारते स्तुति प्रार्थना करते हैं तिस से तुम (मा नस्तोके तनये मा न आयुषि) हमारे पुत्र पौत्र और

हमारे स्वयं जीवन में (मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः) हमारी गौओं तथा हमारे घोड़ों में रिष क्रोध मत करो। तुम्हारे रोष-क्रोध से हमारे पुत्रादि का नाश न हो जावे (भामितो मा नो वीरान् वधीः) हमारे किये अपराधों से क्रोधित हुये हमारे पराक्रमशील भृत्यादि की हिंसा न कीजिये।

भा०—ईश्वर के भक्त पुरुषों के पुत्रादि अकाल में नहीं मरते। जिस से अधिक बलवान् वा जिस के तुल्य कोई स्वामी नहीं है उसकी इच्छा के बिना उस का अनादर करके कोई किसी को मार नहीं सकता। इसी लिये कठोपनिषद् में कहा है कि "ईश्वर जहां नहीं चाहता वहां से पांचवा मृत्यु भी भागता है,, सब से मुख्य मरण दुःख निवारण की प्रार्थना में उपलक्षण से उस के अन्तर्गत होने वाले अन्य छोटे २ सब दुःख दूर हो सकते हैं और अनिष्ट दुःख का छूटना ही मुख्य कर इष्ट की प्राप्ति हुई जानो और ज्ञान के द्वारा मृत्यु आदि का भय छूटना ही मुख्य कर प्रार्थना का प्रयोजन है तथा पूर्णायु हुए बिना बीच में पुत्रादि न मरें यह भी प्रार्थना का गौण प्रयोजन है। यह बाईसवां मन्त्र यजुर्वेद अ० १६ मं० १६ है ॥ २२ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन भीमसेनशर्मणा निर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते
विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या
विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः१॥

अ०—यत्र यस्मिन्नक्षरेऽविनश्वरे निरतिशये ब्रह्मणा हिरण्यगर्भात्परे परस्मिन् परमात्मनि, यद्वा ब्रह्म परमात्मतत्त्वं परं याभ्यां, प्रवाहेण जगत अनादित्वान्नास्त्यन्तोऽवसानं ययोस्ते तादृश्यौ द्वे विद्याऽविद्ये निहिते अवस्थिते गूढे अनभिव्यक्ते सूक्ष्मत्त्वाददृश्ये वर्त्तेते । तयोः क्षरं कल्याणमार्गाच्च्युतिहेतुरविद्याऽमृतं सर्वविधदुःखान्मुक्तिहेतुर्विद्याऽस्ति । यस्तु विद्याऽविद्ये ईशते नियमयति स निरतिशयशक्तिः सर्वज्ञः परेशस्ताभ्यामन्यः ॥

भा०—यो जनोऽविद्यादिक्लेशान्सर्वानर्थहेतूंस्त्यक्त्वा ज्ञानप्लवेन संसारसागरं तरीतुं सर्वदुःखाद्विमुक्तिं चेच्छति । तेन विद्याऽवि-

द्ययोः स्वाम्येवाश्रयितव्यः । नहि सर्वशक्तिस्वाम्याश्रयेण विना तदीयवस्तुनो हानमुपादानं वा कोऽपि कर्त्तुमर्हति ॥ १ ॥

भावार्थः—(अक्षरे) जिस निरतिशय अविनाशी (ब्रह्मपरे) ब्रह्मा नामक हिरण्यगर्भ से परे विद्यमान परमात्मा में (ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याऽविद्ये निहिते गूढे) परमात्मा रूप आत्मतत्त्व जिन से परे है ऐसी प्रवाह से जगत् के अनादि होने पर जिन का अन्त नाश समाप्ति नहीं किन्तु सदा जिन का तार चला जाता है ऐसी दो विद्या और अविद्या नाम ठीक समझना और उलटा समझना दोनों सूक्ष्मरूपसे अवस्थित अदृश्य हुई वर्त्तमान हैं (क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतन्तु विद्या) उन दोनोंमें से कल्याण मार्गसे अलग करने भुलाने वाली अविद्या कहाती और मरणादि सम्बन्धी महादुःखदायी भयोंसे बचाने वा सब दुःखोंसे छुड़ाने वाली विद्या कहाती है (यस्तु विद्याऽविद्ये ईशते सोऽन्यः) और जो विद्या अविद्या की व्यवस्था वा नियम कर्त्ता है जिस के नियम से विरुद्ध विद्या अविद्या कुछ भी नहीं कर सकतीं जिस पर उसकी कृपा होती उसको विद्या और जिस पर कोप होता उसी को अविद्या घेरती है वह अत्यन्त शक्तिवाला सर्वज्ञ ईश्वर विद्या अविद्या दोनों से भिन्न तीसरा है ॥

भा०—जो मनुष्य सब अनर्थों के हेतु अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा के ज्ञान वा विद्यारूप नौका के द्वारा संसाररूप समुद्र के पार होना वा सब दुःखों से छूटना चाहता है उस को उचित है कि विद्या तथा अविद्या के स्वामी का ही शरण लेवे । क्योंकि सर्वशक्तिमान् स्वामी का सहारा लिये बिना उस के वस्तु को कोई भी छोड़ नहीं सकता न ग्रहण कर

सकता है जो कि राजाकी आज्ञा पाकर वा इशारा मात्र पाकर राजकर्मचारी किसी को पकड़ते वा छोड़ते हैं। वैसे ही कर्मानुसार मनुष्यादि को अविद्या पकड़ती वा छोड़ती है॥१॥

यो योनिंयोनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः। ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानै-र्बिभर्त्ति जायमानं च पश्येत् ॥२॥

अ०-योऽग्रे मैथुनसर्गात्पूर्वं सर्गारम्भे कपिलं कपिलवर्णं शुद्धं सात्त्विकं तैजसवर्ण-प्रधानाकृतिमृषिं ज्ञानाधारत्वयोग्यं स्वेनैव प्रसूतमुत्पादितं तं ज्ञानैर्वेदसंस्कारैर्बिभर्त्ति पुष्णाति। जायमानं प्रादुर्भूयमानं ज्ञानादि-शुभगुणोत्कर्षैर्लब्धोच्चप्रतिष्ठं च पश्येत्पश्यति तदुपरि कृपादृष्टिं करोति यश्च योनिं योनिं पृथिव्यादिकं स्थानंस्थानं विश्वानि रूपाणि सर्वान् रूपादिगुणान्सर्वा योनीश्च सर्वाणि प्रभवकारणानि चाधितिष्ठति नियमयति स कपिलादिभ्योऽन्यःपरइति ॥

भा०-ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूवेत्य-न्यत्रोक्तम्। सहि सर्वप्राणभृत्सु प्रथमो मुख्यः

सर्वोपरि वेदादिशास्त्रस्य गूढाशयं बुद्धवान् सर्वापेक्षया प्रशस्ततमो धार्मिको ज्ञानी चाभवत् । नहि ब्रह्माणमन्तरेण प्राणभृत्स्वन्यः कोऽपि तत्समस्तलोऽधिको वा सम्भवति । अत एव ब्रह्मादिस्थावरान्ता जीवगतिः सर्वैर्मन्यते । नच तादृशः कोऽपि देवः परमात्मकृपामन्तरेण सिद्धः सम्भवति । तस्मादस्य कृपया ब्रह्मादयोऽपि महत्त्वमाप्नुवन्ति सएवास्माभिराश्रयितव्यइत्याशयः ॥ २ ॥

भावार्थः-(योऽग्रे कपिलं तदृषिं प्रसूतम्) जो मैथुन-सृष्टि से पूर्व सृष्टि के आरम्भ में तैजसतत्व प्रधान शुद्ध सत्व गुणी तेजस्वी ज्ञानी होने योग्य अपने आप ही उत्पन्न किये उन ऋषि नाम ब्रह्मा को (ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्) वेद के संस्कार रूप ज्ञानों से पुष्ट करता और प्रसिद्ध प्रकट हुए उन ब्रह्मा पर कृपादृष्टि करता वा रखता है (य एको योनिंयोनिमधितिष्ठति) और जो एक ही ईश्वर प्रत्येक पृथिव्यादि कार्य स्थान २ का (विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः) सब रूपादि गुणों तथा जिन से स्थूल कार्य वस्तु उत्पन्न होते उन सब सूक्ष्म कारण तत्वों का अधिष्ठाता नियन्ता होता वह कपिलादि से भी अन्य नाम परे हैं ॥

भा०-"सब इन्द्रादि देवताओंमें मुख्य ब्रह्मा को प्रत्येक महाकल्प के आरम्भ में परमेश्वर पहिले उत्पन्न करता है," यह मुण्डकोपनिषद् में कहा है । एक परमेश्वर से नीचे सब

जगत्के प्राणियोंमें सर्वोपरि ब्रह्मा हैं ब्रह्मासे भिन्न प्राणियों में अन्य कोई उत्तम वा अधिक नहीं हो सकता । इसीलिये ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त जीव की गति सब शास्त्रकार मानते हैं । परमात्मा की कृपा के बिना कोई मनुष्यादि प्राणी वैसे ब्रह्मापन के अधिकार को प्राप्त नहीं कर सकता इस कारण जिस की कृपा से ब्रह्मादि भी महत्त्व को प्राप्त होते हैं उसी का आश्रय हम लोगों को करना चाहिये यह आशय है ॥ २ ॥

एकैकं जालं बहुधा विकुर्व-न्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः । भूयः सृष्ट्वा यतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥

अ०—एष उक्तो देवईश्वरो मनुष्यपशुपक्ष्यादिरूपमेकैकं जालमेकैकं जातिभेदं जीवस्य बन्धहेतुत्वान्मत्स्यादिबन्धकं जालमिव बहुधा नानाप्रकारामेकैकां नानाभेदभिन्नां जातिं विकुर्वन् विशेषेण निर्मिमाणएवास्मिन् क्षेत्रे मायात्मके पञ्चतत्त्वमये ब्रह्माण्डे संहरति नाशयति । मुहुर्मुहुरुत्पादयति नाशयति च । ईशो भूयः पुनरपि तथा तथैव मध्येमध्ये यतयो यतीन् [सुपो व्यत्ययः] लोकव्यवस्थार्थे यत्नशी-

लान् धर्मव्यवस्थापकानसुरविध्वंसकांश्चावतारान् मर्यादापुरुषोत्तमान्राजर्षीन् ब्रह्मर्षींश्च सृष्ट्वोत्पाद्य संहरतीति पूर्वेणान्वयः । एवं महात्मा निरतिशयात्मत्वविशिष्टः परेशः सर्वस्य सर्गस्थितिलयान्कुर्वन् सर्वाधिपत्यं कुरुते।

भा०—संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः । मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहारएव च । क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ इति मनुस्मृतौ—तथा "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।" इत्यादि वेदे यदुक्तं तस्यैवायमाशयः। योहि लोकेऽपि येषां यादृशं यावच्चावस्थापरिवर्तनं कर्त्तुं शक्नोति स तेषां तादृशएवाधिपतिर्भवति । यश्च यस्य सर्गप्रतिसर्गौ करोति न च कोपि तथा कुर्वन्तं व्याहन्तुमर्हति स मुख्योऽध्यक्षः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(एष देव एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्) यह पूर्वोक्त देव नाम प्रकाश स्वरूप ईश्वर, जीवों के बन्धन [कैद होने पकड़ जाने के हेतु होने से मछली आदि को पकड़ने के जाल के समान] के हेतु मनुष्य पशु पक्षी आदि नामक एक २ जाति भेद को नाना भेदों वाला विशेष कर बनाता हुआ [ईश्वर ने मनुष्यादि एक २ जाति में असरूप अवान्तर

जाति भेद कर्मानुसार किये हैं](अस्मिन् क्षेत्रे संहरति) माया-निर्मितपञ्चतत्त्वमय इस ब्रह्माण्डरूप खेतमें लीन करता जाता है [जो २ शरीरादि जिस २ पृथिव्यादि से उत्पन्न होते वे मर २ कर सदा उसी २ अपने कारण तत्त्वमें लीन होते जाते हैं] अर्थात् बार २ उत्पन्न और नष्ट करता जाता है (ईशो-भूयस्तथा यतयः सृष्ट्वा) ईश्वर फिर २ वैसे पूर्व कहे साधारणों की रचना के समान ही बीच २ में लोक की व्यवस्था करने के लिये धर्म की व्यवस्था बांधने वाले असुर राक्षसादि प्रकृति वाले धर्मनाशक प्राणियोंका विध्वंस करने वाले अवतारों को और विशेष उद्योगी यत्नशील साहसी मर्यादापुरुषोत्तम राजर्षि वा ब्रह्मर्षियों को उत्पन्न करके उन का भी संहार किया करता है [जैसे महाराजा भगवान् रामचन्द्रजी वा कृष्णादि हुए] इस प्रकार (महात्मा सर्वाधिपत्यं कुरुते) निरतिशय आत्मिकशक्ति वाला परमेश्वर सब बड़े २ पराक्रमियों की भी उत्पत्ति स्थिति लय करता हुआ-अर्थात् बड़ों से भी बड़ों को अपने चक्र में घुमाता हुआ सब का स्वामी बनता है ॥

भा०-मनुस्मृति में कहा है कि "अविनाशी ईश्वर सब को बार २ उत्पन्न और नष्ट करता है। तथा अपने आप एक ही दशा में ठहरा हुआ खेल करने के समान असंख्य मन्वन्तरों में असङ्ख्यवार सृष्टि और क्षय किया करता है,, तथा वेद ने कहा है कि "विधाता ईश्वर सूर्य चन्द्रमादि बड़े २ शक्तिशाली वा कार्य साधक पदार्थोंको भी पूर्व कल्पों के समान ही बनाया करता है,, इत्यादि का अभिप्राय यहां कहा जानो। लोक में भी जो पुरुष जिस का जैसा बिगाड़ बनाव कर सकता है वह वैसा ही उन का अधिपति होता और जिस की न्यायानुसार नियमानुसार जो करता और

वैसा करते हुए उस के काम में कोई विघ्न नहीं डाल सकता इसी से वह सब का मुख्य अध्यक्ष स्वामी है ॥ ३ ॥

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् । एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥४

अ०—यद्-उ-अनड्वान् यद्वदनड्वानादित्यः सर्वादिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते [इवार्थेऽत्र-उ] एवं स भगवान् परमात्मापि प्रजास्वोतप्रोतसच्चिदानन्दस्वरूपेणोर्ध्वमधश्च तिर्यक् सर्वा दिशः प्रकाशयन् भ्राजते तथा वरेण्यो वरणीय एको जीवमायाभ्यामभिन्नोऽद्वितीयः स देवो द्योतनशीलः परमात्मा योनिस्वभावान् स्वस्वकारणस्वभावधारिणः पृथिव्यादीन् देवादींश्च पदार्थानधितिष्ठति ॥

भा०—यथा सूर्यप्रकाशसाहाय्यमन्तरेण न कस्यापि किमपि कार्यं निष्पद्यते तथैव सच्चिदानन्दस्वरूपेण सर्वत्रावस्थितः सर्वं भ्रामयन् य ईश्वरः सर्वजगद्यात्राहेतुत्वेनास्य सर्व-

स्याधिष्ठाता भवति । यथाप्रकाशयत्येकः कृत्स्नंलोकमिमंरविः । क्षेत्रक्षेत्रीतथाकृत्स्नं प्रकाशयतिभारत। इति गीतासु–निमित्तंमनश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः । रविर्लोकचेष्टानिमित्तंयथायः सनित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥ ईदृशमेव प्रकाशनमधिष्ठातृत्वं चात्रबोध्यम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ–(यद्वनड्वान् सर्वा दिशऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते) जैसे सूर्य ऊपर नीचे और बीच में तिरछी सब दिशा नाम सब ओरके पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ स्वय प्रकाशित रहता है (एवं भगवान् वरेण्य एकः स देवः) इसी प्रकार भजन सेवन तथा स्वीकार करने योग्य वह एक अद्वितीय जीव और माया भी जिस में कल्पित आश्रित हैं ऐसा देव द्योतनशील परमात्मा भी सत् चित् आनन्दस्वरूपसे सब में ओतप्रोत हुआ ऊपर नीचे बीच में सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सुशोभित हो रहा है तथा (योनिस्वभावानधितिष्ठति) अपने २ कारण के स्वभावको धारण करने वाले पृथिव्यादि और देवतादि पदार्थों का अधिष्ठाता बनता है ॥

भा०–जैसे सूर्य के प्रकाश की सहायता के विना किसी का कुछ काम नहीं चलता वैसे सत् चित् आनन्दस्वरूप से सब में ठहरा सब को भ्रमण कराता हुआ ईश्वर सब संसारको नियमानुसार चलने का हेतु होने से सब का अधिष्ठाता होता है । भगवद्गीता में कहा है कि जैसे एक सूर्य इस सब त्रिलोकी को प्रकाशित करते हैं वैसे सब के घट २ में विद्य-

मान ईश्वर सब शरीरों को चेतन करता है। और हस्तामलकस्तोत्र में कहा है कि जैसे अन्धकार को हटाकर सूर्य सब कर्मोंके निमित्त कारण हैं वैसे मन तथा चक्षुरादि इन्द्रियोंकी चेतनताका निमित्त कारण अन्तरात्मा ईश्वर है वही अहंपदवाच्य शरीरी है। वह आकाश के तुल्य सब उपाधियों से रहित है। ऐसा ही सूर्यवत् चेतन प्रकाश द्वारा सबका अधिष्ठाता ईश्वर है ॥ ४ ॥

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद्यः। सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ॥ ५ ॥

अ०—यो विश्वयोनिः सर्वस्य कार्यस्य प्रधानं कारणमीश्वरो यच्च स्वभावं वाय्वादेर्गतिमत्त्वादिकं पचति साधयति । यच्च पाच्यान् परिणतियोग्यान् पृथिव्यादीन् परिणामयेत्परिणामयति यः सर्वान् सत्त्वरजस्तमोरूपान्सभेदान् गुणांस्तत्रतत्रेन्द्रियादिषु यश्च विनियोजयेद्विनियोजयति तदेतत्स एकः सर्वं विश्वमधितिष्ठति । सर्वस्य पचनं विपरिणा-

मनं विनियोजनं च तस्य सर्वाधिष्ठातृत्वम्। यच्चेति क्रियाविशेषणमभ्युपगन्तव्यं सुधीभिः॥

भा०-लोकेऽपि तस्यतस्याधिष्ठातृत्वं तत्रत्यैः कैरपि कर्मभिरेव यथा निष्पद्यतएवमिह परमात्मवर्णनप्रसङ्गेऽप्यवगन्तव्यम् ॥५॥

भाषार्थः-(यो विश्वयोनिर्यच्च स्वभावं पचति) जो सब कार्य वस्तुओं का मुख्य कारण ईश्वर वायु में गति अग्नि में उष्णता आदि स्वभाव नाम प्राकृतिक गुणों को जो पकाता सिद्ध करता (पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेत्) अपनी २ दशा बदलने परिणत होने योग्य पृथिव्यादि को उत्पत्ति प्रलयादि में उस २ परिणाम दशा को जो प्राप्त करता (यः सर्वान् गुणांश्च यद्विनियोजयेत्) और जो ईश्वर अपने २ अवान्तर भेदों सहित सत्त्व रजस्तमोरूप सब गुणों को उन २ इन्द्रियादि में जो नियुक्त करता (एकः सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठति) वह एक ईश्वर इस सब कार्य कारणरूप ब्रह्माण्ड का अध्यक्ष स्वामी इस प्रकार ठहरता है अर्थात् (एतत्) सब को पकाना सब का परिणाम करना और सब को सबमें युक्त करना यही उस का सर्वाधिष्ठाता होना है। मन्त्र में यत्पद क्रिया का विशेषण जानो॥

भा०-लोक में भी उस २ का अधिष्ठाता उस २ सम्बन्धी किन्हीं कर्मों के द्वारा ही जैसे होता है वैसे यहां भी सबको पकाने आदि के द्वारा ईश्वर सर्वाधिष्ठाता होता है॥५॥

तद्वेद गुह्योपनिषत्सु गूढं तद्ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम्। ये पूर्वं

देवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ ६ ॥

अ०-वेदानां गुह्या उपनिषदो वेदगुह्योपनिषदो वेदाशयं मूलमुपादाय याः प्रोक्तास्तासु वेदगुह्योपनिषत्सु तदात्मतत्त्वं गूढं संवृतं विशिष्टाभ्यासरूपान्वेषणेनोपलभ्यं, तद् ब्रह्मणो वेदस्य योनिं कारणं वेदएव योनिः कारणं प्रमाणमस्य वा तादृशं ब्रह्मा विधाता हिरण्यगर्भो सर्ववेदपारगश्चतुर्वेदविदेव वेदते ज्ञातुमर्हति । पूर्वं पूर्वकाले ये रुद्रादयो देवा ऋषयश्च तद् ब्रह्मात्मतत्त्वं विदुस्ते तन्मयास्तदात्मस्वरूपाः सन्तोऽमृता मरणादिजन्यमहादुःखान्मुक्ता वै मुक्ताएव बभूवुः । तथैवेदानीमपि ये तं जानन्ति ज्ञास्यन्ति वा तेऽपि तादृशा दुःखमुक्ता भवन्ति भविष्यन्ति च ॥

भा०-येये जना यथायथा वेदाशयज्ञानसाधनेन परमात्मानं जानन्ति ते तथातथा तन्मया अमृताश्च भवन्ति तावदेव च ब्रह्मत्वमपि तेषुतेषु भवत्येव ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(वेदगुह्योपनिषत्सुतद्गूढम्) वेदों का गुह्य गूढाशय मार्मिक सिद्धान्त प्रकाशित करने वाली उपनिषदोंमें

वह आत्मतत्त्व गूढ़ नाम गुप्त है अर्थात् उपनिषदों का विशेष अभ्यास वार २ शोच विचार रूप मर्म खोजने से प्राप्त हो सकता है (तद् ब्रह्मयोनिं ब्रह्मा वेदते) ब्रह्म नाम वेद के उत्पादक प्रकाशक कारण वा वेद ही जिस की सिद्धि में कारण नाम प्रमाण है ऐसे उस ईश्वर को चारों वेद के जानने वाले वेद पारग सृष्टि कर्त्ता हिरण्यगर्भ नामी ब्रह्मा ही जान सकते हैं (पूर्वं ये देवा ऋषयश्च तद्विदुः) पूर्व कालमें जिन २ इन्द्रादि देवताओं ने तथा ब्रह्मर्षि वा राजर्षियों ने ब्रह्म नामक आत्मतत्त्व को जाना था इसी से (ते तन्मया अमृता वै बभूवुः) वे लोग उसी ब्रह्म में लीन मरणादि सम्बन्धी बड़े २ दुःखोंसे मुक्त ही हुए। इसी प्रकार इस समय भी जो लोग ईश्वर को जानते हैं वा जानेंगे वे भी वैसे ही दुःखों से मुक्त होते हैं और होंगे।

भा०-जो २ पुरुष जैसे २ वेदाशय रूप वेदान्त के ज्ञान रूप साधन से परमात्मा को जानते हैं वे वैसे २ तन्मय और मुक्त होते तथा उन २ में उतना ही ब्रह्मपन भी सदा बढ़ता जाता है॥ ६॥

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्त्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता। स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः॥ ७॥

भा०-अधुना द्वादशपर्यन्तैः षड्भिर्मन्त्रै-स्त्वं पदार्थस्य जीवभावापन्नस्य वर्णनं प्रस्तू-

यते । गुणैः कर्मज्ञानकृतवासनामयैः सत्त्वादिगुणकार्यैरिन्द्रियैर्वाऽन्वयः सम्बन्धो यस्य यथा चक्षुषा पश्यति श्रोत्रेण शृणोतीत्यादिः । फललाभेच्छया कर्मणां कर्त्ता तस्यैव स्वयंकृतस्य फलार्थस्य संचितस्य कर्मणो भोगेन्सुखस्योपभोक्ता स विश्वरूपो नानायोनिषु नानारूपधरः सुखदुःखमोहात्मकगुणत्रयेण सम्बद्धस्त्रिवर्त्मा धर्माधर्मज्ञानजन्या देवयानादयस्त्रयो मार्गभेदा अस्येति पञ्चवृत्तिकस्य प्राणस्याधिपश्चैवं भूतो जीवात्मा स्वकृतकर्मभिरेव देहाद्देहान्तरं सञ्चरति गच्छति ॥

भा०-अत्र पद्यषट्केन जीवस्य स्वरूपस्वभावादिकं स्पष्टतया वर्ण्यते । अविद्योपाधिर्जीवइति वेदान्तसिद्धान्तः, अविद्याजन्यकामकर्मादयो जीवस्य गुणान्वयत्वादौ कारणं बोध्यमतएव गुणान्वयत्वादेर्वैपरीत्यं च परमात्मन्यर्थादेवावगन्तव्यम् । तादृशजीवस्य स्वीयवास्तवस्वरूपपरमात्मबोधेन सर्वबन्धनेभ्यो विमुक्तिं वक्ष्यति ॥ ७ ॥

भावार्थः—अब यहां से १२ पर्यन्त छः मन्त्रों से जीव रूप हुए त्वं पदके अर्थ आत्मा के वर्णन का प्रस्ताव करते हैं। (यो गुणान्वयः फलकर्मकर्त्ता) जो कर्म के जानने की भावना रूप गुणों से वा सत्वादि गुणों के कार्य इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाला [जैसे आंख से देखना, कान से सुनना आदि काम है] तथा फल भोग मिलने की इच्छा से कर्म करने वाला (कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता) स्वयं फल मिलने अर्थ किये उसी सचित कर्म के प्रारब्धरूप सुख दुःख फल का भोगने वाला (स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा) वह नानाप्रकार की योनियों में नाना प्रकारके रूप धारण करता, सुख दुःख और मोह रूप सत्त्वादि तीनों गुणसे बन्धा, तथा ज्ञान पूर्वक किये यागादि कर्म से देवमार्ग, केवल धर्म से पितृयान तथा अधर्म से तिर्यगादि योनि मार्ग ये ज्ञानादि के सम्बन्धी उत्तम मध्यम निकृष्ट तीनों मार्ग जिस के जाने आने के लिये हैं (प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः) तथा पांच भेदों वाले प्राण का स्वामी ऐसा जीवात्मा अपने किये कर्मों के द्वारा ही एक शरीर छोड़के शरीरान्तर को जाता भ्रमचक्रमें निरन्तर घूमता है॥

भा०—इस प्रकरण में छः श्लोकों द्वारा जीव के स्वरूप तथा स्वाभावादि का स्पष्टतया वर्णन करते हैं। वेदान्त का सिद्धान्त यह है कि अविद्योपाधि जीव है, अविद्या अज्ञान से प्रकट होने वाले काम कर्मादि जीव नाम सूक्ष्म शरीरी माया युक्त आत्मा के गुणों से बद्ध होने में कारण जानो, इसी कारण जीव को गुणान्वित कहने से गुणान्वयादि से विपरीतता परमात्मा में अर्थापत्ति द्वारा सिद्ध है। ऐसे जीव को अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा के बोध द्वारा सब दुःख बन्धनों से मुक्ति कहेंगे ॥ ७ ॥

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहङ्कारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव—आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥ ८ ॥

अ०—योऽङ्गुष्ठमात्रपरिमितहृद्देशेऽवस्थितो रवितुल्यरूपो ज्योतिःस्वरूपः संकल्पाहङ्कारसमन्वितः सङ्कल्पैरहङ्कारेण बुद्धेर्गुणेन सुखदुःखादिभोगरूपेणात्मगुणेन शरीरगुणेन जरामरणादिना समन्वितश्चैवाराग्रमात्रः प्रतोदप्रोतलोहशल्याग्रभागमात्रसूक्ष्मपरिमाणोऽपरोऽपि जीवः सूक्ष्मदर्शिभिर्दृष्टः साक्षात्कृतो भवति द्वितीयोऽपिशब्दोऽत्र सम्भावनार्थे तेनापरोऽपि जले सूर्यप्रतिबिम्बवदन्यऔपाधिकोऽपि जीवात्मा सम्भावितस्तत्त्वज्ञैरित्यर्थः ॥

भा०—अङ्गुष्ठमात्रपरिमाणं सङ्कल्पादिभिः समन्वयः स्थूलसूक्ष्मशरीरगुणेन संयोगश्चैतत्सर्वं स्थूलसूक्ष्मशरीरोपाधिकृतमौपाधिकमस्ति । उपाधिना सहैव मोक्षे निवर्त्तते रवितुल्यप्रकाशात्मकत्वं स्वाभाविकं नैव निवर्त्तते। यदास्य संकल्पादयो निवर्त्तन्ते तदा दुःखा-

न्मुच्यते निःश्रेयसमधिगच्छति । "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवति,, संकल्पादीनां प्राबल्यमेव ब्रह्मचक्रेऽवस्थाप्य भ्रामयति। तस्मात्संकल्पादिसमन्वितत्वप्रदर्शनं तच्छिथिलीभावे मुक्तिप्रदर्शनार्थम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः- (योऽङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः) जो अंगूठा बराबर हृदयस्थान में रहता तथा सूर्य के तुल्य प्रकाश स्वरूप (संकल्पाहङ्कारसमन्वितो बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव) वस्तुओं की प्राप्ति वा कार्यों की सिद्धि के संकल्प नाम कामनाओं से अहङ्कारों से सुख दुःख भोगरूप बुद्धि के गुण से [भोगो बुद्धिः सुख दुःखादि की प्रतीति का नाम ही बुद्धि वही भोग है यह वात्स्यायन का मत है] और आत्मा नाम शरीर के जरा मरणादि गुणसे समन्वित सम्बद्ध रहने वाला (आराग्रमात्रोऽप्यपरोपि दृष्टः) बैल आदि को हांकने के पैना वा कोड़ा आदि में लगी आरा नाम लोहकी अरई के सूक्ष्मतर अग्रभाग के समान अतिसूक्ष्म जीवात्मा को सूक्ष्म दर्शियों ने साक्षात् देखा वा जाना है इस मन्त्र में द्वितीय अपिशब्द सम्भावना अर्थ में है इससे जल में सूर्य प्रतिबिम्ब के तुल्य सूक्ष्म स्थूल शरीरोपाधि से अवच्छिन्न जीवात्माकी संभावना तत्त्वज्ञों ने की है ॥

भा०—अङ्गुष्ठमात्र परिमाण, संकल्पादि से युक्त होना, और स्थूल सूक्ष्म शरीर के गुण के साथ संयोग दिखाना यह सब स्थूल सूक्ष्म शरीरोपाधिसे हुआ औपाधिक है। इसी कारण मोक्ष में उपाधिके साथ ही मायामें लीन हो जाता है

परन्तु सूर्यवत् प्रकाश स्वरूप होना आत्मा का स्वाभाविकपन निवृत्त नहीं होता जब इसके संकल्पादि निवृत्त हो जाते तब दुःखों से छूटता और मुक्ति को प्राप्त होता है । (यदा सर्वे०) इत्यादि कथन द्वारा यही बात कठोपनिषद् में स्पष्ट कही है कि जब हृदय में ठहरी हुई कामना छूटती हैं तभी मुक्त हो सकता है । संकल्पादि की प्रबलता ही ब्रह्मचक्र में धर के मनुष्य को भ्रमा रही है । इस से संकल्पादि सम्बन्ध दिखाना उस के शिथिल होने पर मुक्ति होना दिखाने वा जताने के लिये है ॥ ८ ॥

वालाग्रशतभागस्य शतधा-कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥९॥

अ०—शतधा छिद्यमानस्य वालाग्रभागस्य य एको भागस्तस्यापि शतधाकल्पितस्य यो भागस्तावत्परिमितो लिङ्गोपाधिर्जीवो विज्ञेयः सच जीवः स्वीयवास्तविकस्वरूपेण आनन्त्या-यानन्तभावाय नास्त्यन्तोऽस्य तादृशमोक्षभा-वाय कल्प्यते ज्ञानयज्ञादिना समर्थः क्रियते ॥

भा०—एतेनातिसूक्ष्मत्वं जीवात्मन उ-च्यते । नच त्रसरेणुपरिमितस्य वालाग्रभा-गस्य दशसहस्राणि भागाः केनापि कल्पयितुं शक्यास्तस्माच्छब्दार्थप्राधान्यं विहाय वाक्या-

शयएव वक्तुरिष्टः । य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् । ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वैतत् ॥ इति कठोपनिषदुक्तत्वात्परमात्मैव जीवस्य वास्तवं स्वरूपमस्ति, अत्रत्यमतिसूक्ष्मपरिमाणकथनं तु लिङ्गशरीरोपाधिकृतं बोध्यम् ॥ ९ ॥

भावार्थः—(बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च) बालके अग्रभाग के सौ टुकड़े करने पर हुआ जो एक भाग उस के भी फिर सौ भाग करने पर जो एक भाग (भागो जीवः स विज्ञेयः) उतने परिमाण वाला लिंग शरीरोपाधि वाले जीव को जानो (स चानन्त्याय कल्पते) वह जीव अपने वास्तविक स्वरूप से जिस का अन्त नाम नाश नहीं ऐसे मोक्ष को प्राप्त होने के लिये ज्ञानयज्ञादि द्वारा समर्थ किया जाता वा होता है ॥

भा०—इस कथन से जीवात्मा का अति सूक्ष्म होना कहा है। किन्तु त्रसरेणु के तुल्य परिमाण वाले बाल के अग्रभाग के दश हजार टुकड़े हो सकना सम्भव नहीं। इस लिये यहां शब्दार्थ की प्रधानता लेना वक्ता को इष्ट नहीं किन्तु वाक्य का आशय लेना मात्र अभीष्ट वा उचित है कठोपनिषद् ४ वल्ली में कहा है कि कर्म फल भोक्ता जीवात्मा को जो मनुष्य भूत भविष्य के स्वामी परमेश्वर के साथ अभिन्न जानता है वही मोक्ष रूप निर्भय दशा को प्राप्त होता है। इस से सिद्ध है कि जीवात्माका वास्तव स्वरूप परमेश्वर ही है। और यहां कहा अतिसूक्ष्म परिमाण लिंग शरीरोपाधि कृत जानो ॥ ९ ॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः । यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥ १० ॥

अ०—एष जीवात्मा ब्रह्मात्मस्वभावत्वात्स्वरूपतो नैव स्त्री नैष पुमान् नचैवायं नपुंसकोऽपितु यद्यत्स्त्रीत्वादिसंबद्धं शरीरमादत्ते तेन तेन स्त्रीत्वादिना स जीवो युज्यते प्रयुज्यते लोके कन्येयं जाता पुत्रो जातो वेति । अर्थात्तत्तद्धर्मानात्मन्यध्यस्याभिमन्यते—सुरूपोऽहं कुरूपोऽहमहं पुमानहं स्त्री नपुंसकोऽहमित्यादि ॥

भा०—जीवात्मनि स्त्रीत्वादेः किमपि चिह्नं स्वतो नास्ति । अपि तु शरीरएव स्त्रीत्वादिचिह्नानि स्फुटमुपलभ्यन्ते । एवं च पितापुत्रादयः सम्बन्धा अपि शरीरसंयोगादेवात्मनि व्यवह्रियन्ते । अविद्याग्रस्तैरेवास्माभिः शरीरधर्मा जीवात्मनि शुद्धेऽपि योज्यन्ते । तदेव दुःखस्य प्रधानं कारणम् । तत्त्वज्ञानोदये मिथ्याज्ञानापाये च पुंदेहधारिणा स्त्रीशरीरधारिणा वा प्रत्यगात्मविचार-

एतेन जीवेन स्त्रीत्वादिरहितं शुद्धं ब्रह्मात्मकं नित्यमखण्डैकरसं सर्वशक्तिमदाप्तकाममान-न्दमयं स्वस्य रूपं बुद्ध्वा नानादुःखरहितेन सुखिना भूयते ॥ १० ॥

भाषार्थः-(नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः) यह चक्षु आदि से देखना आदि कर्म करने द्वारा प्रत्यक्ष प्रतीत होता जीवात्मा साक्षात् ब्रह्मस्वभाव वाला होने रूप से न-स्त्री न पुरुष और न नपुंसक है किन्तु (यद्यच्छरीरमादत्ते तेनतेन स युज्यते) स्त्रीपन आदि गुण वा चिन्होंसे सम्बन्ध रखने वाले जिस २ शरीरको कर्मानुसार धारण करता है उस २ स्त्रीपन- आदि के साथ वह जीव लोक में प्रयोग किया जाता है कि यह कन्या हुई, पुत्र हुआ वा नपुंसक [हिजड़ा] हुआ अर्थात् उस २ स्त्री आदि शरीरके धर्मों को अपने में आरोपित करके अभिमान करता है कि मै रूपवान् कुरूप, स्त्री, पुरुष वा नपुंसक हूं इत्यादि देहात्मवादरूप स्थूल अज्ञान कहाता है।

भा०—जीवात्मा में स्त्रीपन आदि का कोई चिन्ह स्वयं नहीं है किन्तु स्त्रीपन वा पुरुषपन आदि के चिह्न इस शरीर में ही स्पष्ट दीखते हैं। इसी प्रकार पिता पुत्रादि के सम्बन्ध [नाते रिश्ते] भी शरीर के संयोग से ही आत्मा में कहे जाते है। अविद्या में फसे हुये ही हम लोग स्वयं शुद्ध भी जीवात्मा में शरीर के गुणों वा धर्मों को लगाते वा मानते हैं यही मुख्य दुःख का कारण है। और जब तत्त्वज्ञानरूप विद्यासूर्यका उदय होनेसे मिथ्याज्ञानका नाश होने पर भीतरी अध्यात्म विचारमें तत्पर पुरुष देहधारी वा स्त्री देहधारी जीवात्मा स्त्रीपन आदि से रहित अपने को शुद्ध ब्रह्मस्वरूप

नित्य,अखण्ड, एकरस, सर्वशक्तिमान् सब कामनाओं को प्राप्त, आनन्दस्वरूप जान पाता है तभी नाना प्रकारके अपार दुःखों से रहित हुआ सुखी हो जाता है ॥ १० ॥

संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रा-सास्बुवृष्ट्यात्मविवृद्धजन्म । कर्मा-नुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥ ११ ॥

अ०-केन निमित्तेन जीवः शरीराण्यद-त्तइत्युच्यते--यथा---ग्रासाम्बुनोरन्नजलयोर्वृ-ष्ट्या मुखद्वाराऽन्तरासेचनेन निगलनेनात्मनः शरीरस्य क्रमशो रसरुधिरादिक्रमेणैव विवृद्ध-जन्म वृद्धिः प्रत्यक्षं जायते । तथैव पूर्वोपा-त्तदेहपातावसरे देही जीवः सञ्चितकर्मजन्यैः सूक्ष्मैः संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः स्थानेषु मनु-ष्यादियोनिषु कर्मानुगानि कर्मानुसारीणि रूपाणि मनुष्याकृत्यादिसम्बद्धानि शरीराण्य-नुक्रमेण-अभिसम्प्रपद्यतेऽभितः सम्यक् प्रा-प्नोति । सर्वत्रैवायं जीवः पूर्वं संकल्पयति प्रत्यभिज्ञादिना कामयते तदनन्तरमिन्द्रिया-र्थसंनिकर्षेण स्पृशति ज्ञानेन्द्रियैर्विषयमनुभ-

र्वति स्पर्शनपदमत्रोपलक्षणार्थं तदनन्तरं पश्यति जानाति सुखानुशयिना रागेण रज्यते दृशिरत्र ज्ञानार्थः। तदनन्तरं च विषयं भोक्तुं प्रवर्त्तते तदासक्तो मुह्यति ॥

भा०-जीवः कर्मानुकूलानि मनुष्यादिशरीराण्यादत्ते यथा कस्यचिज्जीवस्य मानुषदेहेनोपार्जितं बहुविधं नानायोनिषु गमनहेतुकं प्रबलं कर्म तत्रापि यत्कर्म तेष्वाधिक्येन प्रबलं तस्य फलं यत्र भोक्तुं युज्यते तादृशजातौ तावज्जायते तदनन्तरं च यादृशकर्मफलभोगपर्यायस्तादृशजातौ स जायते। तथा च द्वादशे मनुनोक्तं संगच्छते-"श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम्। चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति" ॥ ११ ॥

भाषार्थः-किस कारण मनुष्यादिस्थ जीव शरीरोंको धारण करता है सो कहते हैं (ग्रासाम्बुवृष्ट्यात्मविवृद्धजन्म) जैसे अन्न जल खानेसे रस रुधिरादि बनने द्वारा क्रमशः शरीरकी प्रत्यक्ष वृद्धि होती है। वैसेही पहिले धारण किये शरीर के छूटने के समय (देही 'संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः ') जीवात्मा सञ्चित कर्मों से होने वाले सूक्ष्म कामना, इन्द्रियों की प्रवृत्ति, साक्षात् बोध वा दृष्टिपात और मोह नाम उस २ शरीरादि में आसक्ति फंसजाना तथा अपने को भूलजाना इन सबों के

द्वारा (स्थानेषु कर्मानुगानि रूपाणि—अनुक्रमेणाभिसम्प्रपद्यते) मनुष्यादि योनियों के शरीर रूप स्थानोंमें मनुष्याद्याकृतियों वा भिन्न २ व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले भिन्न २ रूपों को कर्मों के क्रमानुसार सम्यक् प्राप्त होता है। यह जीवात्मा सभी कामों में सर्वत्र ही प्रथम प्रत्यभिज्ञादि द्वारा संकल्प करता, तदनन्तर इन्द्रिय और विषयके संयोगसे स्पर्श करता अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों से विषय का अनुभव करता है। स्पर्शनके सब शरीर में व्याप्त होनेसे उपलक्षणार्थ ग्रहण है। तदनन्तर देखता जानता नाम सुखानुशयी राग से रंग जाता है तिस पीछे विषय को भोगने में प्रवृत्त होता उस में लिप्त हुआ सब भूल जाता यही मोह है ॥

भा०—जीवात्मा कर्मानुकूल मनुष्यादि शरीरों को धारण करता है। जैसे किसी जीव के मनुष्य देह से संचित किये नाना योनियों में जन्म लेने के हेतु बहुतप्रकार प्रबल कर्म हैं उन में भी जो अधिकता से प्रबल कर्म होता उसका फल जहां भोगना उचित है वैसी जाति में प्रथम जन्म लेता और उसके अनन्तर जैसे कर्म फल भोगकी पारी होती वैसी जाति में वह जन्म लेता है। इसी के अनुसार १२ बारहवें अध्याय में मनु जीका कहना ठीक घटता है कि 'कुत्ता सुअर गधा, ऊंट गौ, बकरी, भेड़, मृग, पक्षी तथा चाण्डाल भङ्गी आदि योनियों में ब्रह्महत्या करने वाला जीव क्रमशः जन्म लेता है ॥ ११ ॥

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देहीस्वगुणैर्वृणोति। क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥ १२ ॥

अ०-देही जीवः स्वगुणैः स्वकृतकर्मजन्य संचितसंस्कारैरेव तदनुकूलानि स्थूलानि सूक्ष्माणि च बहूनि रूपाणि मानुषादिनानारूपाणि शरीराणि वृणोति स्वीकरोत्यादत्ते। तत्तत्क्रियागुणैः पूर्वकृतकर्मगुणैरात्मगुणैर्भौतिकशरीरगुणैश्च सम्बद्धस्तेषां रूपाणां संयोगस्य हेतुः कारणमपरोऽपि परमात्मतो भिन्नोऽपि सांसारिको जननमरणादिमानौपाधिको जीवो दृष्टः सूक्ष्मदर्शिभिः साक्षात्कृतः। अर्थात्पर एवात्मा मुख्यतया प्रेरकत्वेन प्रधानः संयोगहेतुस्तत्त्वज्ञैरनुभूयतेऽपरस्त्वौपाधिकभेदेन दृश्यते ॥

भा०-स्थूलानीत्यादिना पूर्वस्यैव स्पष्टार्थोऽनुवादः। जीवः शरीरेण संयुज्यते कर्मानुकूलानि शरीराणि स्वीकरोति यद्यपीशापेक्षया जीवः परतन्त्रः स तन्नियमबद्ध एव कर्मानुगानि निरयादिरूपशरीराण्यादत्ते तथापि जीवः संयोगहेतुर्भवति जीवमन्तरेण को जायेत ? यो जायते स एव जीव इति लक्षणं च निस्सरति शुद्धः परमेश्वरो लोकचेष्टानिमित्तसूर्यइवेच्छादिरहितः प्रयोजकः

कारयिता पापपुण्ययोरस्ति । अन्तःकरणोपा-
ध्यवच्छिन्नश्चिदाभासमात्रो जीवः कर्त्ताऽस्ति।
अतएव शरीरसयोगहेतुत्वमुभयोरपि मन्त-
व्यम् ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(देही स्वगुणैरेव बहूनि स्थूलानि सूक्ष्माणि च रूपाणि वृणोति) जीवात्मा अपने किये कर्मों से संचित होने वाले संस्काररूप संचित कर्मों के द्वारा ही मनुष्यादि सम्बन्धी नाना प्रकारके रूपों वाले स्थूल सूक्ष्म अनेक शरीरों को धारण करता है (क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः) और पूर्वकृत उन २ संचित कर्मों के गुणों नाम संस्कारों से और भौतिक शरीर सम्बन्धी आलीय गुणों से संयुक्त हुआ, उन २ स्थूल सूक्ष्मशरीररूपों के संयोग का हेतु नाम कारण परमात्मा से भिन्न जीवात्मा भी सूक्ष्मदर्शियों ने साक्षात् किया इस देह में विद्यमान है अर्थात् कुम्बकवत् प्रेरक होनेसे परमात्मा ही मुख्य कर शरीर धारणादि प्रकृति सयोग का प्रधान हेतु विद्वानोंने जाना माना है तथा अपर नाम जीवात्मा तो स्थूल सूक्ष्म शरीरोपाधियोंके कारण भिन्न प्रतीत होने वाला सयोग का गौण हेतु है।

भा०=स्थूलानि–आदि कथन से पूर्व कहे अंश का ही स्पष्टार्थ अनुवाद है। जीव शरीरों से सयुक्त होता कर्मानुसार शरीरों को धारण करता है । और यद्यपि ईश्वर की अपेक्षा जीव परतन्त्र है वह उस के नियम में बन्धा हुआ ही कर्मानुसार नरकादि भोगरूप शरीरों को धारण करता है तथापि शरीर के साथ सयोग होने का हेतु जीव भी अवश्य है। मनुष्यादि प्राणियों की चेष्टा के निमित्त सूर्यनारायण

के तुल्य इच्छादि रहित सदा शुद्ध निर्विकार परमेश्वर पाप-पुण्य करनेमें और उन के फल भोगने में साक्षीमात्र प्रयोजक कर्त्ता है। और अन्तःकरणोपाधिसे पृथक् प्रतीत होने वाला चिदाभासमात्र जीव प्रयोज्य कर्त्ता है। इसी कारण शरीरसंयोग के तथा कर्मों के हेतु दोनों को मानना चाहिये ॥ १२ ॥

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥

अ०—कलिलस्य गहनस्य परिवर्त्तनशीलस्य संसारस्य मध्येऽनाद्यनन्तं सदैकरसमपरिवर्त्तनशीलं विश्वस्य सर्वस्य स्रष्टारमनेकरूपं तस्मिंस्तस्मिन् मायात्मके वस्तुनि तत्तद्रूपेणैव व्याप्तं विश्वस्यापरिमितस्यापि सर्वस्य ब्रह्माण्डस्यैकमेव परिवेष्टितारं स्वात्मना सर्वतो व्याप्यावस्थितं देवं स्वस्यैव वास्तवं स्वरूपं परेशं ज्ञात्वा प्राणी सर्वपाशैर्बन्धनैर्दुःखैर्मुच्यते ॥

भा०—स सप्तमादिमन्त्रैः प्रतिपादित आत्मा स्वयं शुद्धोऽपि कल्पिताऽविद्याजन्यकामकर्मफलरागादिगुरुभारैराक्रान्तो दुःख-

सागरनिमग्नो देहेऽहम्भावमापन्नो वासनाबद्धः प्रेततिर्यङ्मनुष्यादियोनिषु जीवभावं प्राप्तः कदाचित्पुण्यवशादीश्वरार्थनिष्कामकर्मानुष्ठानेन वीतरागादिमलो ब्रह्मात्मज्ञानेनोत्पन्नेहामुत्रार्थफलभोगविरागः शमादिसाधनचतुष्टयसम्पन्नस्तं स्वीयं वास्तवस्वरूपमात्मानं तत्त्वतो ज्ञात्वा विमुच्यते ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(कलिलस्य मध्येऽनाद्यनन्तम्) एक दशा में न रहने वाले परिवर्त्तनशील अगाध वा असीम संसारसमुद्र के बीच, जहां कोई भी एकसा नहीं रहता वहां अनादि अनन्त एकरस अपनी दशा न बदलनेके स्वभाव वाले (विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्) सब जगत्के रचने वाले उस २ मायात्मक पदार्थ नाम वस्तुमात्रमें उसी २ के रूप से व्याप्त (विश्वस्यैकं परिवेष्टितारम्) अपने स्वरूप से सब ब्रह्माण्ड के सब ओर व्याप्त होके अवस्थित एकही सबको अपने भीतर रखने वाले (देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्मुच्यते) अपनेही वास्तविक स्वरूप देव ईश्वर को जानकर प्राणी सब दुःखबन्धनो से छूट जाता है ॥

भा०—सप्तमादि गत मन्त्रों में जीव रूप से कहा वह आत्मा स्वयं शुद्ध होने पर भी कल्पित अविद्या के कारण प्रकट होने वाले काम और कर्म के फल तथा रागादि रूप अनेक बोझों से दबा हुआ दुःखसागर में गोता खाता शरीर को मैं मानता वासना बन्धनों से बंधा प्रेत पश्वादि और मनुष्यादि शरीरों में जीव भाव को प्राप्त हुआ कभी पुण्योदय होने पर ईश्वरार्पण निष्काम कर्म के अनुष्ठान से रागादि मलिनता निवृत्त होने पर आत्मज्ञान से ऐहिक तथा

स्वर्गीय सुख भोग का लालच छूट जाने पर शमादि साधनों से युक्त हुआ अपने वास्तविक आत्म स्वरूप को जान कर मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् । कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥१४॥

अ०—भावेन सत्तयैव ग्राह्यं [अस्तीत्येवोपलब्धव्यइति कठे] यस्य सत्तयैव सर्वं सत्तात्मकमुपलभ्यते तस्यैव परा निरतिशया सत्तेति ग्राह्यम्, यद्वा भावेन विशुद्धान्तःकरणेन गृह्यते यस्तम् । नीडो निवासस्थानं गृहदेहादिकं तद्रहितं, भावः स्थूलः सर्गोऽभावो लयस्तयोः कर्त्तारं शिवं कल्याणमयं तन्निष्ठाः कल्याणमेव लभन्ते, कलानां प्राणादिषोडशमुण्डकोपनिषदुक्तानां सर्गकरं तादृशं देवं दीप्यमानं परेशं ये स्वात्मत्वेन विदुर्जानन्ति ते तनुं शरीरं जहति त्यक्त्वा च विदेहमुक्ता अपि भवन्त्येव ॥

भा०—सर्वत्रैवास्तीति मत्वा यः सर्वदा न तं विस्मरति तस्य गुणान् कर्माणि च सर्वदा ध्यायति सएव तं ज्ञातुमर्हति ॥१४॥

भावार्थः-(भावग्राह्यमनीडाख्यम्) जिसकी सत्ता से ही सब सत्तारूप दीखता है उसी की सत्ता सर्वोपरि निरतिशय अविनाशिनी है इस कारण ईश्वर है क्योंकि उस के बिना किसीको अस्ति-है ऐसा नहीं कह सकते इससे जो सदा है वह ईश्वर भाव नाम सत्तासे ही ग्राह्य है अथवा भाव नाम विशुद्धान्तःकरण से ग्रहण करने योग्य है तथा नीड नाम घर वा शरीरादि कोई जिस का निवासस्थान नहीं (भावाभावकरं शिवम्) स्थूल सृष्टि और प्रलय करने वाला कल्याणस्वरूप जिस का शरण लेने वाले सभी कल्याण को ही प्राप्त होते हैं (कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्) तथा प्राणादि सोलह कला नाम मुण्डकोपनिषद् में कहे सृष्टि के भागों नाम अंशो को रचने वाला ऐसे देव नाम परमात्माको जो लोग अपना वास्तविक स्वरूप जानते हैं वे शरीररूप बन्धनको छोड़ देते और विदेह मुक्त भी हो ही जाते हैं ॥

भा०-सर्वत्र ही है इस प्रकार मानकर सब कालमें उसको जो नहीं भूलता, खाते पीते चलते फिरते बैठते उठते सब दशा वा स्थानोंमें उसी की महिमासे संसारको व्यवस्था चलती है ऐसा देखता विचारता शोचता है उस के गुण कर्मों का सदा ध्यान करता है वही उस को जान सकता है ॥ १४ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन भीमसेनशर्मणा निर्मिते कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥



स्वभावमेके कवयो वदन्ति
कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं
भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥ १ ॥

अ०–एके केचिल्लोके विद्वत्त्वेन विदिताः परीक्षकाभासाः कवयो विद्वांसः स्वभावमेव कारणं वदन्ति तथाऽन्ये वेदमर्माजानानाः परितो मुह्यमानाः कालं कारणं वदन्ति । देवस्येश्वरस्य महिमा तु महत्त्वमेव सर्वस्य कारणमिति तु लोके वेदमर्मावलोकने ज्ञानोदये निष्पद्यते येन महिम्नेदं ब्रह्मचक्रमनिशमविरतं भ्राम्यते ॥

भा०-कालस्वभावो नियतिर्यदृच्छेत्यादि यदुक्तं प्रथमाध्याये तदुपलक्षणार्थमत्र कालस्वभावयोर्ग्रहणम् । कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । अथर्ववेदे । इत्यादीनि वेदशास्त्रवाक्यानि दृष्ट्वा सापेक्षनिरपेक्षतया शास्त्रव्यवस्थामबुद्ध्वा च केचित्प-

पिडतम्मन्याः कालादीनि कारणानि वदन्ति। तदिदमज्ञानम् । यतएकएव भूतभविष्यकालकारणानां सूर्यादीनामपि कारणं निरतिशयमिति बहुत्र वेदादिषु सूचितम् । यद्यपि कालादीनि गौणानि सापेक्षाणि कारणानि भवन्ति तथापि निरपेक्षप्रधानकारणापेक्षया तेषामकारणत्वमवगन्तव्यं यद्वा कालः प्रजा असृजतेत्यादिवाक्येषु कालात्मकः प्रजापतिः परमेश्वरएव कालादिपदवाच्योऽभिप्रेतइति युक्तम् ॥ १ ॥

भाषार्थः-(एके स्वभावं तथान्ये परिमुह्यमानाः कवयः कालं वदन्ति) लोक में विद्वानुपनसे प्रसिद्ध कोई परीक्षकाभास लोग स्वभाव को तथा वेद के मर्म को न जानते हुए सब ओर से पण्डिताई के अहंकाररूप मोह अन्धकार में फंसे अपनेको पण्डित मानने वाले काल को कारण कहते वा मानते हैं (लोके देवस्यैष महिमा तु) परन्तु वेद का मर्म बोध रूप ज्ञानोदय होने पर तो उस परमात्मा की महिमा महत्व सब का कारण है यह सिद्ध हो जाता है (येनेदं ब्रह्मचक्रं भ्राम्यते) जिस महिमा नाम अचिन्त्य अनन्त आश्चर्यरूप शक्ति से यह ब्रह्मचक्र प्रत्येक समय निरन्तर भ्रमाया जाता है ॥

भा०—(कालः स्वभावो०) इत्यादि जो प्रथमाध्यायके आरम्भ में कहा है उस के उपलक्षणार्थ यहां काल और स्वभाव का ग्रहण है "काल प्रजा को रचता और काल ने

ही पहिले प्रजापति को उत्पन्न किया,, यह अथर्ववेद में कहा है। वेद शास्त्र के इत्यादि वचनों को देख के और सापेक्ष निरपेक्ष रूप से शास्त्र की व्यवस्था को न जानकर अपने को पण्डित मानने वाले पण्डिताभास कोई लोग कालादिकों को सब का कारण कहते हैं सो यह उन का अज्ञान है। क्योंकि वह ईश्वर भूत भविष्यत् काल के कारण सूर्यादि का भी निरतिशय निरपेक्ष कारण है यह बात वेदादिशास्त्रों के अनेक स्थलों में सूचित की गयी है। यद्यपि अथर्ववेद के मन्त्र का अर्थ सापेक्ष दशा में काल को कारणता दिखाने परक हो सकता है तथापि निरपेक्ष प्रधान कारण की अपेक्षा उनका कारण न होना वा न मानना भी ठीक सिद्ध ही है अथवा (कालः प्रजा असृजत०) इत्यादि वेद वाक्यों में कालात्मक परमेश्वर ही कालादि पदों का वा च्यार्थ लेना इष्ट है ऐसा मान लेना चाहिये ॥ १ ॥

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।
तेनेशितं कर्म विवर्त्तते ह पृथ्व्या-
प्यतेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥२॥

अ०—यो ज्ञो ज्ञानस्वरूपः सर्ववित्सर्वज्ञो गुणी शुद्धत्वनिष्पापत्वादिगुणवान् कालस्यापि यः कालोऽन्तकरः। कालकारइति पाठे कालस्यापि कर्त्ता येनावृतं हि व्याप्तमेव सर्वमिदं जगत्सदावतिष्ठते न कदाप्यव्याप्तम् ।

तेनेशितं तदधिष्ठातृप्रयोजकं सर्गाद्यर्थं यत् त्कर्म विवर्त्त ते परिणमति तच्च परिणतं पृथिव्यादिपञ्चभूतात्मकं भवतीति चिन्त्यं सुधीभिः ॥

भा० - क्रियमाण सञ्चितं प्रारब्धनाम्ना भोगोन्मुखं च त्रिविधं कर्म । यदादौ क्रियते तदेव परिणतं सञ्चित भवति तस्यापि परिणामः फलं सर्वत्र जायते । यथा वृक्षमूले कृतं सेचनादि कर्म रसादिरूपेण सञ्चितं फलरूपं जायते । एवमत्राप्ययस्कान्तमणिकल्पेश्वरप्रयोजककर्त्तृकं प्रकृत्याधारं सर्गारम्भे सदा जायमानं संक्षोभनसञ्चलनादिकर्म परिणतिमापन्नं कालेन पृथिव्यादिपञ्चतत्त्वफलात्मकं सम्पद्यतएवं च सोऽयस्कान्तमणिकल्प ईश्वरोऽस्य सर्वस्य प्रधानमनन्यं कारणं सिध्यति । सम्प्रति स्थूलकार्यदशायामपि तेन व्याप्तमेव सूर्यचन्द्रपृथिव्यादिकं सर्वं जगत् नियमेन प्रवाहहेतुकं जायते । तद्व्याप्तिमन्तरेण न किमपि कदापि व्यवस्थया स्थातुं कार्यं साद्धुं वाऽलं भवति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यो ज्ञः सर्वविद् गुणी कालकालः) जो ईश्वर ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ शुद्ध तथा सदा निष्पाप होने

आदि गुणों वाला और कालका भी काल है अर्थात् कालको भी खा जाने वाला तथा (कालकारः) ऐसा पाठान्तर माना जाय तो जो काल का भी कर्त्ता करने वाला है (येनावृतं हि सर्वमिदम्) जिस से व्याप्त ही यह सब जगत् सदा रहता अर्थात् जिस से अव्याप्त एक क्षणभर भी कोई तृण मात्र भी वस्तु नहीं ठहरता (तेनेशितं कर्म विवर्त्तते ह) वही जिस का प्रेरक वा अधिष्ठाता है ऐसा जो कर्म नाम क्रिया सृष्टि रचना के लिये प्रवृत्त होती, वही परिणाम को प्राप्त हुआ कर्म (पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्) पृथिवी जल अग्नि वायु तथा आकाश नामक पञ्चतत्त्वरूप संसार बनता है यह विचारशीलों को चिन्त्य है ॥

भा०—क्रियमाण संचित और भोगने में आने वाला प्रारब्धरूप यह तीन प्रकार का कर्म कहाता है जो प्रथम करते समय क्रियमाण कहाता वही द्वितीय दशा में परिणत हुआ संस्कार और दीर्घ काल तक रहने वाले संस्कार ही वासनारूप से संचित कर्म कहाते और वही कर्म तीसरी दशा में परिणाम को प्राप्त प्रारब्ध फल रूप होता है। इस का प्रत्यक्ष दृष्टान्त यह है कि जैसे वृक्ष की जड़ में क्रिया जलसींचनादि कर्म रसादिरूप से उस वृक्ष में संचित होता हुआ काल पाकर फलरूप से प्रकट होता है। इसी प्रकार यहां चुम्बक पत्थर के समीप होने मात्र से लोहे में क्रिया प्रकट होने के समान सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरकी समीपता होने मात्र से लोहस्थानी माया में संक्षोभ वा संचलनरूप सूक्ष्म स्वाभाविक जो क्रिया होती जिसका प्रेरक कर्त्ता ईश्वर ही ठहरता है वही क्रिया परिणाम को प्राप्त होती हुई पृथिव्यादि पञ्चतत्त्व फल रूप से प्रकट हो जाती है। इस प्रकार वह ईश्वर चुम्बक पत्थर के समान कुछ चेष्टा वा

इच्छा न करता हुआ भी सब सृष्टि का मुख्य कारण सिद्ध हो जाता है। इस विचार के साथ सांख्यादि किसी दर्शन का विरोध नहीं आता। वर्त्तमान समय की स्थूल कार्यदशा में भी सूर्य, चन्द्र वा पृथिव्यादि सब जगत् उस ईश्वर से व्याप्त हुआ ही नियम पूर्वक प्रवाहरूप से चलने का हेतु हो रहा है। उस की व्याप्तिके विना कोई भी वस्तु कदापि नियम के साथ किसी कार्य को सिद्ध नहीं कर सकता। इस से वह अब भी चुम्बक के समान क्रिया का हेतु है ॥ २ ॥

तत्कर्म्म कृत्वा विनिवर्त्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्। एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥३॥

अ०—तद्भूतसर्गरूपं कर्म कृत्वा विनिवर्त्त्य भूयः पुनरीक्षणपुरस्सरं तत्त्वेन तत्त्वान्तरेणाबादिनैकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्वा तथाष्टभिः प्रकृतिभिः [पञ्चतन्मात्रतत्त्वानि मनो बुद्धिरहङ्कारइत्यष्टौ सांख्याभिमताः प्रकृतयः] योगं समेत्य संगमय्य तथा कालेन, सूक्ष्मैरात्मगुणैः संकल्पादिरूपैरन्तःकरणगुणैश्च तत्त्वस्य पृथिव्यादितत्त्वस्य संयोगं कृत्वा नानाविधं वस्तु सृजति। सर्वं ब्रह्मचक्रं चालयतीति च ॥

भा०–ईश्वरः सर्गारम्भे पूर्वं सूक्ष्मात्स्थूलभूतानि सृजत्यनन्तरं सर्वं परस्परसंयोगेन पञ्चविधं कृत्वा द्विभौतिकत्रिभौतिकानि चातुर्भौतिकपाञ्चभौतिकानि च नानाविधानि मनुष्यादिप्राणभृच्छरीरादीनि सृष्ट्वा तत्र बुद्ध्यादीनां संयोगं कृत्वा सर्वं चालयति ॥ ३ ॥

भाषार्थः–(तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य) पूर्वोक्त पञ्चभूतों की सृष्टिरूप कर्मको करके ईश्वर ने फिर ईक्षण किया अर्थात् भूतों से अगली होने वाली सृष्टि के लिये ईश्वर ने अपना भीतरी स्वाभाविक विचार करके (भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेनैकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन च सूक्ष्मैरात्मगुणैश्चैव तत्त्वस्य योगं समेत्य) फिर एक दो वा तीन तत्त्वान्तरोंके साथ [जगत् के किन्हीं पदार्थों में दो का किन्हीं में तीन का और किन्हीं में चार तत्त्वों का संयोग प्रधान माना जाता और यही ठीक है । आकाशतत्त्व यद्यपि सब में है तथापि उस का संयोग नाम बन्धन किसी में नहीं होता सदा सबसे अलग निर्लेप रहता है । [एक का १ के साथ संयोग होकर दो का, एक का दो के साथ मेल होकर तीन का और एक का तीन के साथ मेल होकर चारका संयोग बनेगा] तथा पांच तन्मात्र तत्त्व और मन बुद्धि अहङ्कार इन सांख्य-दर्शनकार की मानी हुई आठ प्रकृतियों के साथ, काल के साथ और सङ्कल्प नाम कामना इच्छादि अन्तःकरण सम्बन्धी सूक्ष्मगुणोंके साथ पृथिव्यादि तत्त्व का संयोग करके नाना प्रकार के सांसारिक पदार्थ बनाता और सब ब्रह्मचक्र को प्रवाह के साथ चला रहा है ॥

भा०—ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में प्रथम सूक्ष्म से स्थूल पृथिव्यादि भूतों को रचता तदनन्तर सब भूतों को परस्पर मिलाके अर्थात् एक २ को पांच २ प्रकार का करके [इसीको पञ्चीकरण करते हैं जिस में पांच भूत पचीस प्रकार के हो जाते हैं] द्विभौतिक, त्रिभौतिक, चातुर्भौतिक और पाञ्च-भौतिक नाना-प्रकार के मनुष्यादि प्राणधारियोंके शरीरादि पदार्थों को रचके तथा उन में बुद्धि आदि का संयोग करके सब जगत् के प्रवाह को निरन्तर चलवा रहा है ॥ ३ ॥

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः । तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥४॥

अ०—सत्त्वादिशुभगुणान्वितानि कर्माण्यारभ्य कुर्वाणः सर्वान् भावान्सर्वान्संकल्पान् यो विनियोजयेदीश्वरार्पितानि कुर्यादिन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्तइति धारयन्प्रकृतिः कुरुते कर्मेति जानन्वा कुर्यात्तेषां कर्मणां संकल्पाऽहङ्काराणामभावे कृतानामपि रागद्वेषरहितकर्मणां नाशो जायते नच तद्वा कर्माणि नवानि सञ्जायन्ते । एवं कर्मक्षयेऽविद्यादिक्लेशवासनानां नाशे स जीवस्तत्त्वतः

पृथिव्यादितत्त्वेभ्यो वस्तुतोऽन्यश्चैतन्यस्वरूपो याति स्थूलदेहं सूक्ष्मशरीरं च त्यक्त्वा केवलो गच्छति मुक्तो जायते ॥

भा०-नच प्राणभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतइति गीतायामुक्तं तच्च कर्मणां यावद्देहभावित्वादैकान्तिकमेव सत्यम् । तस्माद्रागद्वेषवियुक्तानि दर्शनादीनि स्वाभाविकानि कर्माणि कुर्वाणो विज्ञो बालोन्मत्तादिवत्तज्जन्यशुभाशुभफलैः संस्कारसञ्चयाभावान्न लिप्यते । शास्त्रविहितानि विशेषेण सर्वाणि कर्माणि वाऽयस्कान्तवत्प्रयोजके परमगुरौ समर्पयेत् यथा बालादयो व्यभिचारस्तेयादिकं दुष्कर्म किमपि न कुर्वन्ति तथा विरक्तोपि न करोति संस्काराभावात् । येये च सूक्ष्माः सङ्कल्पा उत्तिष्ठन्ति तांस्तान् तत्रैव विलाययति । ध्यानहेयास्तद्वृत्तयइत्यादियोगसूत्रोक्तप्रकारेण यदा सञ्चितवासनाः शिथिली भवन्ति नव्याश्च नोत्पद्यन्ते तदा प्रवृत्तिहेतुसञ्चितकर्माभावे दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितध्यानयोगाभ्यासादिना स मुक्तो भवति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(गुणान्वितानिकर्माणिप्रारभ्य) सत्त्वादिगुणों से युक्त कर्मों का प्रारम्भ करके कर्म करता हुआ भी (सर्वान् भावान् यो विनियोजयेत्) जो पुरुष सब भावों नाम कामनाओं को ईश्वर में समर्पित करदे त्याग देवे (तेषामभावे कृतकर्मनाशः) उन कर्मों के अहङ्कारों वा सङ्कल्पों के अभाव में रागद्वेष रहित होके किये कर्मों का नाश हो जाता अर्थात् उन स्वाभाविक वा शास्त्रोक्त कर्मों से नये २ संस्कार सञ्चित नहीं होते (कर्मक्षये स तत्त्वतोऽन्यो याति) इस प्रकार संचित वासनाओंका धीरे धीरे ध्यानादि द्वारा नाश होने पर वह जीव पृथिव्यादि तत्त्वोंसे अर्थात् पार्थिव स्थूल शरीरसे सूक्ष्म से भी अपनेको भिन्न मानता हुआ जो वस्तुतः शरीरसे भिन्न है शरीर छोड़के कैवल्य दशा को प्राप्त हो जाता है ॥

भा०—"जीवित रहने पर्यन्त कोई प्राणी सब कर्मों को नहीं छोड़ सकता" यह गीता में कहा है सो शरीर रहने तक कर्मोंका साथ होने से यह अत्यन्त ही सत्य है। इस से जब कर्म छूट नहीं सकते तो ज्ञानी वा जिज्ञासु पुरुष रागद्वेषादि दोषों से रहित देखना सुनना आदि स्वाभाविक कर्मों को करता हुआ भी बालक वा उन्मत्तादि के समान संस्कारोंका सञ्चय न होनेसे संचित कर्म से होने वाले शुभाशुभ फलों से लिप्त नहीं होता। विशेष कर शास्त्रोक्त वा सभी कर्मों को चुम्बक के तुल्य सब के प्रेरक परमेश्वर में समर्पण कर देवे तथा जैसे काम संकल्प न होने से बालकादि चोरी व्यभिचारादि किसी दुष्ट कर्म को नहीं करते वैसे कामना पूर्वक सङ्कल्पोंके अभावसे विरक्त भी वैसे काम नहीं करता। और वासना रूप से अवस्थित जो २ सूक्ष्म संस्कार ज्ञानीके चित्त में उठते हैं उन २ को वहीं लीन वा नष्ट करता जाता है (ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः) इत्यादि योग सूत्रों में कही रीति

से जब संचित वासना धीरे २ शिथिल होती जातीं और नयी वासना उत्पन्न नहीं होने पाती तब संसार में फंसावट के हेतु संचित कर्म के अभावमें दीर्घकाल तक निरन्तर श्रद्धा भक्ति के साथ सेवन किये ध्यान योगाभ्यासादि द्वारा वह योगी मुक्त हो जाता है ॥ ४ ॥

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः । तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥ ५ ॥

अ०-स ईश्वर आदिः सर्वकारणानामपि कारणं शरीरसंयोगादिनिमित्तानां सञ्चितकर्मणामविद्यादीनां च हेतुस्त्रिकालाद्वर्त्तमानातीतानागतरूपकालत्रयात्परो भिन्नोऽवच्छेदेन तत्र कालो नोपावर्त्तते सच प्राणादिषोडशकलास्वन्तर्गतो नास्ति । एवंभूतो मनीषिभिर्दृष्टः साक्षात्कृतः क्रियते च तं तादृशं विश्वरूपं सर्वरूपवद्वस्तुषु तत्तद्रूपेणावस्थितं भवत्यस्मात्सर्वमिति भवो भूतोऽविनश्वरो नित्यं विद्यमानएवेदृशमीड्यं सर्वस्तुत्यं देवमीश्वरं स्वचित्तस्थं पूर्वमुपास्याऽयमहमस्मीति तन्निष्ठो भूत्वा जीवस्तत्त्वतोऽन्यो यातीति

तन्निष्ठो भूत्वा जीवस्तत्त्वतोऽन्यो यातीति पूर्वेणैवान्वयः ॥

भा०—चेतः समाधाय तस्याद्यादिपदैः कृतं व्याख्यानं विविक्तप्रदेशे यो ध्यायति बहिःकरणान्यन्तःकरणानि च वशीकरोति स एकस्मिन् ग्रन्थेऽध्याये पद्ये वा तस्य स्वामिनो महत्त्वमानन्दस्वरूपं च मनसोपलभ्य तुष्यत्येव सएव साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यउन्निनीषतइत्यादि प्रमाणेन सएव सर्वं कारयति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(स आदिः संयोगनिमित्तहेतुः) वह सब का आदि मूल कारण, शरीर संयोगादि के निमित्त—संचित कर्म वा अविद्यादि का भी हेतु अर्थात् शुभाशुभ कर्म कराने वाला है (त्रिकालात्परः) भूत भविष्य वर्त्तमान रूप तीनों काल से परे नाम भिन्न जिस में भेद करने वाले काल की प्रवृत्ति नहीं कि पहिले था वा आगे होगा वा अब हुआ पहिले न था इत्यादि (अकलोऽपि दृष्टः) जो प्राणादि सोलह कलाओं के अन्तर्गत नहीं ऐसे ईश्वर को ज्ञानी ध्यानी लोग साक्षात् देखते जानते हैं (तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यम्) सब रूपवान् वस्तुओं में उसी २ रूप से अवस्थित, सब के उत्पत्ति स्थान अविनाशी नित्य विद्यमान, सबको स्तुति प्रार्थना करने योग्य (स्वचित्तस्थं देवं पूर्वमुपास्य) अपने चित्त नाम अन्तःकरण में स्थित ऐसे दिव्यस्वरूप ईश्वर को यही मैं हूं इस प्रकार

तत्पर तन्निष्ठ होने पूर्वक-प्रथम उपासना करके जीव पञ्च-तत्त्वमय शरीरके बन्धन से छूट सकता है ॥

भा०—चित्त को समाहित करके उस के आद्यादिपदों से किये व्याख्यान को जो पुरुष एकान्त में बैठ कर शोचता और बाहर भीतर के इन्द्रियों को वशीभूत करता है वह एक ग्रन्थ वा एक अध्याय अथवा एक श्लोक में ही ब्रह्म सर्वोपरि के महत्त्व वा आनन्दस्वरूप को मन से प्राप्त करके सन्तुष्ट अवश्य होता है जिस को ऊपरी दशामें पहुंचाना चाहता उससे वही शुभ कर्म कराता है और वही ईश्वर अशुभ कर्म कराता है, इस प्रमाणानुसार वही सब कराता है ॥५॥

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्त्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वा-त्मस्थममृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥

अ०—समानं वृक्षं परिषस्वजाते—इत्या-दिषु वृक्षः संसारउक्तस्तस्याकृतयः सूर्यादीनां रचनाप्रकारभेदाः कालाकृतयोऽहरादिरूपा-स्ताभिः परो भिन्नोऽन्यस्ताभिरलिप्तः। यस्मा-दयं प्रपञ्चो व्यक्तीभूतः संसारः परिवर्त्तते—आविर्भवति तिरोभवति च तं धर्मावहं ध्या-यिनां धर्मप्रापकमधर्मनाशकं सर्वैश्वर्याणा-मीशं स्वामिनं विश्वस्य धामाधारममृतमम-

रणधर्मैकमात्मस्थं स्वान्तःकरणस्थं ज्ञात्वा तत्त्ववतोऽन्यो याति ॥

भा०—आत्मा यद्यपि संसारवृक्षकालाद्याकृतिषु तत्तदाकाररूपेणैव तत्रतत्र प्रविष्टस्तथापि वास्तवस्वरूपेण वृक्षाद्याकृतिभ्यो भिन्नएव । सर्वाकृतिरहितत्वादेवातीन्द्रियस्तस्मादेव ध्यानयोगाभ्यासादिप्रबलतरसाधनैः शुद्धया सूक्ष्मप्रज्ञया तं कश्चिदेवाश्चर्यमिव पश्यति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यस्मादयं प्रपञ्चः परिवर्त्तते) जिससे यह प्रत्यक्ष दीखता स्थूल जगत् का सब फैलाव प्रवृत्त हुआ है। अर्थात् जिससे इस सबका उत्पत्ति विनाशरूप सदा परिवर्त्तन होता रहता है (स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यः) वह तूर्यादि रूप वृक्षनाम नाशवान् संसार की भिन्न २ बनावटों तथा दिनरात आदि काल की भिन्न २ आकृतियों से अलिप्त और सदा अलग है (धर्मावहं पापनुदं भगेशम्) उस, ध्यान शील पुरुषोंके हृदय में धर्मको पहुंचाने, सञ्चित करने वाले पापरूप अधर्म को भगाने वाले, सब ऐश्वर्योंके स्वामी (ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम) सबके आधार मृत मरण धर्मसे रहित ईश्वरको अपने अन्तःकरणमें स्थित जानकर जीव संसार के दुःख बन्धनों से छूट सकता है ॥

भा०—आत्मा यद्यपि संसार वृक्षकी और कालादिकी आकृतियोंमें उन्हीं २ के नामरूपसे विद्यमान रहता हुआ सबका प्रेरक वा प्रवर्त्तक है तथापि अपने वास्तविक स्वरूपसे कालादिकी आकृतियोंसे भिन्न ही है। सब प्रकार की बनावटोंसे रहित होने के कारण ही ईश्वर अतीन्द्रिय है इन्द्रिय गोचर नहीं

होता, इसी कारण ध्यान तथा योगाभ्यासों द्वारा शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि से कोई ही उस को आश्चर्य के तुल्य जान सकता वा देख सकता है ॥ ६ ॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्वि-
दाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥

अ०-ईश्वराणां वैवस्वतादीनां राजादीनां वा परमं महेश्वरं राजाधिराजादीनामपि महान्तं निरतिशयं प्रभुं देवतानामग्न्यादीनां च परमं दैवतं निरतिशयदेवत्त्वेन संयुक्तं पतीनां प्रजापत्यादीनामपि परमं पतिं रक्षकं सूक्ष्मतराव्यक्तादपि परस्तात् सूक्ष्मतरं तं भुवनानामीशमीड्यं सर्वस्तुत्यं देवमीश्वरं विदाम वयं जानीयामेति जनैरुत्साह उद्योगो वा कार्य्यः ॥

भा०-अत्र सर्वभावापेक्षयेश्वरस्य निरतिशयत्वं स्फुटमेव प्रत्याय्यते तस्मात्तस्य सातिशयज्ञानायोद्योगो न कार्यः । ईश्वरत्वादीनां यत्र काष्ठाप्राप्तिः सएव वाच्य ईश्वरोऽत्रोपनिषत्सु ज्ञेयत्वेनेष्टइति ॥ ७ ॥

भाषार्थः-(तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्) उस यमराज आदि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर अर्थात् राजाधिराजों [शाहंशाहों] के भी ऊपर अनन्त सामर्थ्य वाले प्रभु (तं देवतानां परमं च दैवतम्) उस अग्न्यादि वा इन्द्रादि देवताओं के भी परम देवता सर्वोपरि देवतापन से युक्त (पतीनां परमं पतिं परस्तात्) प्रजापति आदि प्रजा रक्षकों के भी परम रक्षक, अतिसूक्ष्म अव्यक्त नामक कारण से भी परे सूक्ष्मतर (भुवनेशं देवमीड्यं विदाम) उस सब भुवनों के स्वामी सबको स्तुति करने योग्य देव ईश्वर को हम जानें वा जान सकें-ऐसा उत्साह वा उद्योग मनुष्योंको करना चाहिये ॥

भा०—यहां सब विद्यमान पदार्थों की अपेक्षा स्पष्ट ही ईश्वरको निरतिशय प्रतीत कराया है, इसलिये उसको किसी से छोटा वा किसी के बराबर मानने का उद्योग कदापि नहीं करना चाहिये । ईश्वरादिपनके जहां काष्ठा प्राप्ति नाम हद्द है वही वाच्य ईश्वर यहां उपनिषदोंमें जाननेको इष्ट है ॥७॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ८ ॥

अ०—तस्य कार्यं शरीरं करणं चक्षुरादि-साधनं च वस्तुतो न विद्यते तत्समस्तत्तुल्यस्ततोऽभ्यधिको वा न कश्चिद्दृश्यते स्वाभा-

विको ज्ञानक्रियारूपा सर्वविषयज्ञानप्रवृत्ति-र्बलक्रिया स्वसन्निधिमात्रेण सर्वस्य वशीकरणरूपा चास्येश्वरस्य विविधैव परा निरतिशयाऽनन्ता च शक्तिः श्रूयते वेदादिति शेषः ॥

भा०—नहि लोकेषु कोऽपि ज्ञानेन्द्रियैर्मनःषष्ठैर्विना ज्ञानक्रियां भोगायतनशरीरेण विना वा बलक्रियां कर्तुं शक्नोति । यश्च स्वभावेनैव देहेन्द्रियैर्विनापि सर्वस्य धारणं पालनं च करोति । सर्वहिताय सर्वविद्यामयं वेदं चोपदिशति तत्तुल्यस्ततोऽधिको वा को भवितुमर्हति ? न कोऽपीति बहुविधावतारशरीरेषु सत्स्वपि तानि शरीरेन्द्रियाणि वास्तविकानि तस्य न भवन्ति किन्तु नाटयद्रष्टवत्कल्पितान्येवातउक्तं मायामाणवको हरिरिति।८।

भावार्थः—(तस्य कार्यं करणं च न विद्यते) उस ईश्वर का कार्यनाम शरीर तथा करणनाम चक्षु आदि इन्द्रिय वास्तव में नहीं हैं (न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते) तथा न कोई उस के बराबर और न कोई उस से अधिक दीखता है (स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया परा च विविधैव शक्तिरस्य श्रूयते) स्वाभाविकी सब विषयोंको जानने की प्रवृत्ति ज्ञानक्रियारूप और अपनी समीपता होनेमात्र से सब पृथिव्यादि को वशी करने वाली स्वाभाविकी बलक्रियारूप नाना प्रकार की परा नाम अनन्तशक्ति इस ईश्वर की वेद से सुनी जाती वा सिद्ध ज्ञानी ज्ञानियों के कथन से सुनने में आती है ॥

भा०—लोक में कोई पुरुष मन सहित छः ज्ञानेन्द्रियों के विना ज्ञानक्रिया नाम किसी को जान सकना तथा भोग के स्थान शरीर के विना किसी प्रकार का उठाना धरना पकड़ना फेंकनादि,बल सम्बन्धी कुछ कर्म नहीं कर सकता। परन्तु जो स्वभाव से ही शरीर और इन्द्रियों के विना भी सब जगत् का अनन्त धारण पालन तथा सब के हितार्थ शुद्ध सर्व विद्यामय वेद का उपदेश मनुष्यों को करता है। उस के तुल्य वा उस से अधिक और कौन हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं। अनेक प्रकार के अवतार शरीर धारण करने पर भी वे अवतार के शरीरेन्द्रिय ईश्वर के वास्तविक नहीं होते किन्तु नाटक दिखाने के तुल्य कल्पनामात्र शरीर होते हैं इसी कारण श्रीमद्भागवत में लिखा है कि मायामात्र अवतार शरीर होते हैं। ॥ ८ ॥

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ९ ॥

अ०—लोके तस्य कश्चित्पतिर्नास्त्यतएव चेशिता नियन्ताऽपि नास्ति। नच तस्य किमपि लिङ्गं चिह्नं धूमादिवदनुमापकमस्ति। करणाधिपस्येन्द्रियस्वामिनो जीवस्याप्यधिपः स्वामी स सर्वस्य कारणमभिन्ननिमित्तोपा-

दानमस्त्यतएवास्य कश्चिज्जनिता जनयितो-त्पादको नास्ति नचास्य कश्चिदधिपोऽस्ति ॥

भा०—कस्याप्यधिकारे यो न तिष्ठति सर्वदा सर्वथा स्वतन्त्रो निराकारः सर्वाध्यक्षः सर्वनियन्ता सर्वोत्पादकः सर्वविधशक्तेः काष्ठां प्राप्तश्च सएवेश्वरो नो ब्रह्म दधात्वित्युत्तरेणान्वयः ॥ ९ ॥

भावार्थः—(लोके तस्य कश्चित्पतिर्नास्ति) दृष्टि गोचर होने वाले संसार में उसका कोई पति नाम रक्षक वा पालक नहीं है (न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्) न उस का कोई नियन्ता—उस को नियम में चलाने वाला तथा न धूमादि से अग्नि आदि को जाननेके तुल्य उसका अनुमान कराने वाला जगत् में कोई चिन्ह है (स कारणं करणाधिपाधिपः) वह सब संसार का निमित्त तथा उपादान कारण और करण नाम इन्द्रियों के स्वामी जीवका भी अधिष्ठाता प्रभु है (नचास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः) और इस ईश्वरका न कोई उत्पादक कारण और न कोई स्वामी है ॥

भा०—जो किसी के आधीन नहीं रहता, सब काल में सब प्रकार से जो स्वतन्त्र, निराकार, निराधार, निर्विकार, सर्वस्वामी सर्वनियन्ता, सर्वोत्पादक और असीम शक्ति वाला है वही ईश्वर हमारे लिये ज्ञानमय वेद का धारण करे यह अगले मन्त्रकी प्रार्थना के साथ सम्बन्ध जानो ॥ ९ ॥

यस्तूर्णनाभइव तन्तुभिः प्रधा-

नजैः स्वभावतो देवएकः स्वमावृ-
णोत्। स नो दधातु ब्रह्माप्ययम्॥१०

अ०—यथोर्णनाभिः स्वदेहजैस्तन्तुभिः स्वस्यैव देहमावृणोति। तथैव प्रधानजैः प्रकृतिजैस्तन्तुभि-र्महदादिकार्यात्कार्यान्तरापन्नै-स्तारतरैर्नानाभेदभिन्नैः पदार्थैर्यएको देव ईश्वरः स्वभावतः स्वाभाविकेनैव गुणेन स्वं स्वस्य रूपमावृणोत् सर्वस्मिन्कार्यवस्तुनि व्याप्यादृश्योऽवस्थितः। स ईश्वरो नोऽस्मभ्यमप्ययमव्ययमविनश्वरं ब्रह्म दधातु ददातु तद्रूपोऽहं भवेयमित्याशयः॥

भा०—परमेश्वरस्यैव सम्यक् स्वरूपबोधे तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते तदैव मिथ्याज्ञाननिवृत्तिः सत्यामेव तस्यां दुःखनिवृत्तिरतो जिज्ञासुपुरुषैरात्मबोधायेश्वरप्रार्थनमावश्यकं कार्यम्॥१०॥

भाषार्थः (ऊर्णनाभइव) जैसे मकरी अपनी ही देह से प्रकट हुए जालरूप सूतों से अपने को ही ढांपती है वैसे ही (प्रधानजैस्तन्तुभिर्यएको देवः स्वभावतः स्वमावृणोत्) प्रकृति नामक प्रधान से होने वाले महदादि कार्यों के नाना भेद भिन्न ताररूप [सिलसिलेवार] सूत्रोंसे जो एक ही देव ईश्वर अपने स्वाभाविक गुण से अपने स्वरूप का आवरण करता अर्थात् सब कार्य वस्तुओं में व्यापक होके अदृश्यरूप

से ठहरता है [अथवा यों कहो कि कार्य पदार्थ जो प्रेयरूप बने हैं उन को फंसावट ही अपने वास्तविक स्वरूप के न दीख पड़ने का ढक्कन वा रुकावट है (हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्) इस वेद मन्त्रका भी यही अभिप्राय है] (स नोऽव्ययं ब्रह्म दधातु) वह ईश्वर हमारे लिये अविनाशी आत्मतत्त्वके शुद्ध ज्ञानका दान करे अर्थात् अटल तत्त्वज्ञान हम को देवे ऐसी प्रार्थना हम करते हैं ॥

भा०—परमेश्वरका ही ठीक २ स्वरूप जान लेने पर तत्त्वज्ञान होता है तभी मिथ्याज्ञान जो सब दुःखों का मूल कारण है उस की निवृत्ति होती और अविद्या की निवृत्ति होने पर ही मनुष्य की भीतरी आंखें खुलतीं और दुःख दूर भागते हैं इस कारण आत्मबोध होने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करना आवश्यक जानो ॥ १० ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ ११ ॥

अ०—एको देव ईश्वरः सर्वप्राणिषु गूढः संवृतः सर्वांशेष्वयस्यग्निवद् व्याप्तिशीलः सर्वभूतानां प्राणिनामन्तरात्मा प्रेरकः कर्मणामध्यक्षः प्रयोजकत्वात् सर्वभूतेष्वधि--उपरिभावेन स्वस्यानन्तशक्त्या नियमयन् वसति,

साक्षी सर्वस्य शुभाशुभं कर्म सर्वत्र पश्यति सर्वस्य चेताऽन्तःकरणानां चेतयिता केवलः सर्वस्मात्सदा निर्लिप्तो निर्गुणः सत्त्वादिगुणासंसृष्टः ॥

भा०—एवं प्रकारेण सर्वत्रावस्थितं सर्वसाक्षिणं सर्वनियन्तारं भूरादिलोकेष्वग्न्यादिषु च तत्तन्नामरूपैरेव विद्यमानं तत्तदात्मकं यो जीवः स्वीयं वास्तवं स्वरूपं जानन् सदैवाश्रयति सएव कृतार्थः सम्पद्यते ॥ ११ ॥

भाषार्थः–(एको देवः सर्वभूतेषु गूढः) एक ही देव ईश्वर सब प्राणियों में गुप्त सूक्ष्मरूप से छिपा (सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा) सब वस्तुओं के सर्वांशों में लोहे में अग्नि के तुल्य व्यापक, सब प्राणियों का अन्तर्यामी प्रेरक (कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः) प्रयोजन होने से कर्मों का अध्यक्ष, सब प्राणियों को अपनी अनन्त शक्ति से नियम में चलाता हुआ सब में स्वामी होकर बसता (साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च) सब के शुभाशुभ कर्मों को सर्वत्र देखता, सब के अन्तःकरणों को चिताने वाला, सदा सब से अलग और सत्त्वादिगुणों से सदा अलग रहता है ॥

भा०–इस प्रकार से सर्वत्र विद्यमान, सर्वसाक्षी और सर्वनियन्ता पृथिव्यादि लोकों में अग्न्यादि में तथा मनुष्य पश्वादि में उस २ के ही नाम रूपों से विद्यमान उस २ रूप परमेश्वर को जो मनुष्य अपना वास्तविक स्वरूप जानता हुआ सदा शरण लेता वही कृतार्थ हो जाता है ॥ ११ ॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति। तमा-
त्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां
सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

अ०-निष्क्रियाणां क्रियारहितानां बहूनामन्तःकरणावच्छिन्नचिदाभासानां जीवानां य एको वशी वशे स्थापयिता। अन्तःकरणोपाधिभेदेन बहुत्वमापन्नश्चेतनात्मा वस्तुतो निष्क्रिय एवानात्मशरीरादिधर्मान्स्वस्मिन्नारोप्य कर्त्ता भोक्ताऽहमित्यभिमन्यते। एकं बीजं प्रकृत्याख्यं कारणं यो बहुधा नानाकार्यरूपं करोति विस्तारयति। ये धीरा ध्यानशीलास्तमात्मस्थमात्मन्यवस्थितमनुपश्यन्ति सर्वान् पश्यन्तं पश्यन्ति जानन्ति तेषामेव मोक्षाख्यं शाश्वतं सनातनं सुखं नेतरेषामिति ॥

भा०-भूषणादिबहुभेदभिन्नमपि सुवर्णमेकमेव यथा सदखिलभूषणान्यधितिष्ठति यथैकमेव सूत्रमखिलं वासोजातमधितिष्ठति तथैव देवमनुष्यतिर्यगादिगतं जीवजातमेक एवात्मा परमेश्वरोऽधितिष्ठति तदधीनाः सर्वे

जीवाः सच वस्तुतो निष्क्रियः कर्त्तृत्वभोक्तृत्वादिशून्यः सएवाहमस्मीति पश्यन् धीरो नित्यं शान्तिसुखमाप्नोति नान्यः ॥ १२ ॥

भाषार्थः-(बहूनां निष्क्रियाणां य एको वशी) क्रिया गुण रहित अन्तःकरणोपाधि से भिन्न २ प्रतीत होने वाले व्याप्त एक आत्मा के छायारूप बहुत जीवों को जो एक ही अपने आधीन रखता अर्थात् चेतन स्वरूप एक ही आत्मतत्त्व अन्तःकरणों के अनेक होने से अनेक रूप प्रतीत होता हुआ क्रिया गुण से रहित है वह शरीरेन्द्रियों के धर्मों को अपने में आरोपित करके अपने को कर्त्ता भोक्तादि मानता है। (य एकं बीजं बहुधा करोति) जो प्रकृतिरूप एक ही बीज नाम कारण को असंख्य प्रकार का कार्य रूप बनाता फैलाता है (ये धीरास्तमात्मस्थमनुपश्यन्ति) जो ध्यानी ज्ञानी योगी लोग सब को देखते हुये उस को अपने स्वरूप में अवस्थित देखते जानते हैं कि ईश्वर ही जीव नाम रूप से विद्यमान है (तेषां शाश्वतं सुखं नेतरेषाम्) उन्हीं को मुक्तिनामक सनातन सुख मिलता है अन्यों को नहीं ॥

भा०-भूषणादि अनेक रूप होता हुआ भी सुवर्ण जैसे वस्तुतः एक ही रहता है और सब भूषणादि एक सुवर्ण के ही अधीन होते हैं वा जैसे सभी वस्त्र एक सुवर्ण के ही अधीन होते हैं। वैसे ही देव मनुष्य पश्वादि सभी योनिस्थ जीव मात्र एक ही आत्मतत्त्व के अधीन हैं। और वह आत्मा कर्तृत्व भोक्तृत्वादि से रहित निष्क्रिय है। वही सर्वगत आत्मा मेरा वास्तविक स्वरूप है ऐसा जानता हुआ विद्वान् शान्ति सुख को प्राप्त होता है अन्य नहीं ॥ १२ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥

अ०-नित्यानां जीवानां पृथिव्यादीनां वा मध्ये योऽतिशयेन नित्यः, चेतनानां जीवानां मध्ये यो निरतिशयचेतनः, यएको बहूनां जीवानां कामान् कामनानिमित्तान् भोगान् शुभाशुभकर्मफलानि विदधाति तत्सर्वस्य कारणरूपं सांख्ययोगाधिगम्यं चेतनाचेतनभेदबोधजितेन्द्रियत्वादिना प्राप्तुं योग्यं देवं द्योतनात्मकमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वपाशैः सर्वदुःखबन्धनैर्जीवो मुच्यते ॥

भा०-यत्रैकत्वं नित्यत्वं चेतनत्वं विधातृत्वं सर्वकारणत्वमेकाग्रचेतःसाध्यविवेकेन ज्ञेयत्वं देवत्वं च निरतिशयं काष्ठां प्राप्तं तस्यैव बोधोऽगाधसंसारार्णवपारगमनाय सेतुरिति तस्य नित्यत्वचेतनत्वाभ्यामेव जी-

ज्ञानां नित्यत्वचेतनत्वे विकारेषु प्रकृतिगुण-वद् विद्येते इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

भाषार्थः--(यो नित्यानां नित्यश्चेतनानां चेतनो बहूनामेकः कामान् विदधाति) जो नित्य जीवों वा पृथिव्यादि में भी सर्वोपरि नित्य, चेतन जीवों में जो सर्वोपरि चेतन जो बहुतोंमें एक ही ईश्वर है वही कामनारूप संकल्प ही जिनके निमित्त कारण हैं ऐसे शुभाशुभ कर्म फलों को देता भुगाता वा नियत करता है । (तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं देवं ज्ञात्वा) उस सबके कारण विवेकख्यातिरूप सांख्यज्ञान और सावधानता जितेन्द्रियता रूप योग से ही प्राप्त होने योग्य चेतन प्रकाशमय देव ईश्वरको जानकर जीव (सर्वपाशैर्मुच्यते) सब दुःख के बन्धनों से छूट जाता है ॥

भा०--जिस में एकत्व, नित्यत्व, चेतनत्व, रचनाशक्ति सर्व कारणत्व, एकाग्र चित्त से सिद्ध होने वाले विवेक द्वारा ज्ञेयत्व, और देवत्व असीम दशा को पहुंचा विद्यमान है उसी का जानना अगाध संसार सागरके पार पहुंचने के लिये अच्छा सीधा उत्तम पुल बंधा हुआ है जैसे मानव शरीरादि विकार पदार्थों में मूल कारण पृथिव्यादि के गन्धादि गुण रहते हैं वैसे एक अपरिच्छिन्न आत्मा के ही नित्यत्व और चेतनत्व सब पृथिव्यादि में वा जीवों में विद्यमान हैं ॥१३॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १४ ॥

अ०-तत्र तस्मिन् ब्रह्मणि न सूर्यो न चन्द्रतारकं भाति नेमाः प्रत्यक्षमुपलभ्यमाना विद्युतः कार्याग्नेः कारणभूता अपि यदा भान्ति तर्हि कुतोऽयं कार्योऽग्निर्भायात् । किन्तु तमेव परमात्मानं भान्तं प्रकाशयन्तं सर्वं सूर्यादिकमनुभाति तत्प्रकाशसाहाय्यमुपलभ्यैव प्रकाशते । अर्थात् तस्य भासा दीप्त्या सर्वमिदं सूर्यादिकं विभाति प्रकाशते सूर्यादीनां स्वतः प्रकाशनसामर्थ्यं नास्ति किन्तु परमेश्वरएव तत्तन्नामरूपावच्छिन्नस्तेषां प्रकाशस्य मूलमस्ति ॥

भा०-यथा सूर्योदयकालानन्तरं नक्षत्राण्युल्कापाताश्च दिवा सन्तोप्येवं तिरोभवन्ति यथा तदभावः प्रतीयते सर्वत्रैव सजातीयेन बलवता निर्बलसजातीयबाधनियमात् । एवं प्रकाशत्वसामान्येन सजातीयपरमात्मनि प्रकाशमयसमक्षे सर्वे सूर्यादयोऽस्तं यन्ति । अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्षते ॥ १४ ॥

भाषार्थ-(तत्र न सूर्यो न चन्द्रतारकं भाति) उस परमेश्वर में न सूर्य न चन्द्रमा और न तारे प्रकाश करते (नेमा

विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः) तथा ये अत्यन्त चमकने वाली बिजुली जो कार्यरूप भौतिकाग्नि का कारण है वे भी जब उस में प्रकाश नहीं कर सकतीं तो इस कार्यरूप अग्नि की क्या शक्ति है जो वहां प्रकाश पहुंचावे किन्तु (तमेव भान्तं सर्वमनुभाति) उसी परमात्मा को प्रकाशित देख के सब ज्योति प्रकाशित होती हैं अर्थात् (तस्य भासा सर्वमिदं विभाति) उसी के दिये प्रकाश को पाकर ये सब सूर्यादि प्रकाश करते हैं सूर्यादि पदार्थों में स्वय प्रकाशन शक्ति नहीं है किन्तु उनमें उस २ नाम रूप से विद्यमान एक परमेश्वर ही उनकी प्रकाश शक्ति का मूल कारण है ॥

भा०—जैसे सूर्यका उदय होने पश्चात् दिनमें वहीं आकाश मण्डल में विद्यमान भी तारागण तथा उल्कापात ऐसे ढंप जाते वा दब जाते हैं जिस से उन का दिन में अभाव ही प्रतीत होता है सो यह सर्वत्र का नियम है कि सजातीय बलवान् निर्बल सजातीय का सदा ही बाधक होता है। इस प्रकार प्रकाशपन की सामान्यता से प्रकाशस्वरूप सजातीय परमात्मा के सामने सब सूर्यादि का प्रकाश अप्रकाश हो जाता है वा यों कहो कि जिन योगियों के अन्तःकरण में आत्मज्ञान के प्रकाश का उदय होता है उन को सूर्यादि का प्रकाश फीका प्रतीत होने लगता है। इसी लिये ब्रह्मज्ञान के साधन वा उपायों में सूर्यादि के प्रकाश की अपेक्षा नहीं मानी गयी है ॥ १४ ॥

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः
पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १५ ॥

अ०=अस्य सर्वस्य भुवनस्य ब्रह्माण्डस्य मध्ये एकएव हंसोऽविद्यादितमो हत्वा निरतिशयतया विविक्तः सएवाग्निरविद्यादिदाहको भूत्वा सलिले देहात्मना परिणते मानुषादिशरीरे यद्वा यज्ञदानादिना शोधिते सलिलवत्स्वच्छेऽन्तःकरणे सन्निविष्टो जलेऽग्निरिव प्रविष्टस्तत्तद्रूपएव वर्त्तते तमेवैकं विदित्वा जीवो मृत्युमत्येति । अयनाय परमपदाप्तयेऽन्यः पन्था न विद्यते ॥

भा०—अग्नितत्त्वादिष तत्तदाकारेणावस्थितस्य यस्येश्वरस्य सर्वदाहकत्वं प्रकाशकत्वं हंसत्वं विवेचकत्वं च निरतिशयं काष्ठां प्राप्तं तस्यैव बोधो मोक्षस्य सर्वदुःखप्रहाणस्य हेतुरस्ति ॥ १५ ॥

भावार्थः—(अस्य भुवनस्य मध्य एको हंसः) इस अनन्त ब्रह्माण्डके बीच एक ही अविद्यादि अन्धकार सर्वथा नाशक या सब का सर्वोपरि विवेचक है (सएवाग्निः सलिले सन्निविष्टः) वही अविद्यादि का दाहक दोषों को सर्वथा नष्ट करने वाला अग्नि हो कर जलसे पृथिवी ओषधि अन्न और शुक्र द्वारा परिणाम को प्राप्त हुए मनुष्यादि के शरीर में या यज्ञदानादि के द्वारा स्वच्छ जलके तुल्य अन्तःकरणमें प्रवेश करके जल में अग्निके तुल्य उसी २ के रूप से विद्यमान है (तमेव विदित्वा मृत्युमत्येति) उसी को जान कर जीव

मृत्युरूप ग्राहके भय से बच सकता है (अयनायान्यः पन्था न विद्यते) परमपद प्राप्तिके लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

भा०—अन्नयादि तत्त्वोंमें सब २ के रूपसे विद्यमान जिस ईश्वर के सब को जलाने की शक्तिरूप अग्निपन प्रकाशकता और हंसरूप विवेचन शक्ति ये सब गुण निरतिशय अधीन-रूप से हैं उसी का जानना सब दुःखों से छूटने का मुख्य हेतु है ॥ १५ ॥

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः । प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ १६ ॥

अ०—स विश्वकृत्सर्वस्य कर्त्ता स्रष्टा विश्ववित्सर्वस्य वेत्ता—आत्मा सर्वान्तर्यामी सर्वस्य योनिः कारणं ज्ञो ज्ञानस्वरूपः कालस्यापि कालः कर्त्ता वा शुद्धत्वादिगुणवान् सर्वविन् सर्वं विन्दति प्राप्नोति । प्रधानक्षेत्रपतिः प्रकृतिविज्ञानात्मनोः पालकः । सत्त्वादिगुणानामीशः संसारः प्रवाहप्रवृत्तिर्मोक्षो निःश्रेयसाधिगमः स्थितिः प्रलयो बन्धो देहेन्द्रियादिभिर्जीवस्य सम्बन्धः सर्गस्तेषां हेतुः कारणम् ॥

भा०—यतः सएव संसारमोक्षादिदशानां हेतुस्तस्मात्तस्यैव शरणगतस्तमेव विदित्वाऽ-

पारसंसारसमुद्रपारं भवितुं शक्नोति नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति ॥ १६ ॥

भावार्थः-(स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः) वह सब का स्रष्टा सब का ज्ञाता सर्वान्तर्यामी प्रेरक तथा सब का कारण (ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः) जो कि ज्ञानस्वरूप काल का भी अन्त करने वा रचने वाला शुद्धत्व निष्पापत्वादि गुण युक्त तथा सब को सदा प्राप्त है (प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः) प्रकृति और बुद्धिगत चिदाभासरूप जीव का पालक रक्षक, सत्वादि गुणों का स्वामी और (संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः) प्रवाहरूप से जगत् की प्रवृत्ति, मोक्षप्राप्ति, प्रलय और उत्पत्ति का कारण है ॥

भा०-जिस कारण वही बन्ध मोक्षादि दशाओं का हेतु कर्त्ता धर्त्ता है इस से विज्ञानात्मा जीव उसी के शरणागत हुआ उसीको जानकर अपार संसार समुद्र के पार हो सकता है किन्तु विपत्तियोंसे बचनेका अन्य कोई उपाय नहीं है ॥१६॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो
ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव
नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय ॥१७॥

अ०-यो ज्ञो ज्ञानस्वरूपः सर्वगः सर्वव्याप्तोऽस्य सर्वस्य ब्रह्माण्डस्य गोप्ता रक्षकस्तन्मयो तत्तद्वस्तुनि तत्तन्मयो ज्योतिर्मयो वाऽमृतो मरणरहित ईशे प्रधानत्वमापन्ना-

स्वैश्वर्यवतीषु राजादिविभूतिषु विशेषेण यः संतिष्ठते स ईशसंस्थ एवंभूत एवास्य सर्वस्य जगतो नित्यमेवेशे नियन्ता भवति । नाना-विभूतिरूपावस्थितिमन्तरेणान्यो हेतुरीशनाय न विद्यते ॥

भा०–यदि परमेश्वरः सर्वमयोऽविनश्वरो ज्ञानस्वरूपः सर्वत्र व्याप्तश्चराचरस्य रक्षको राजादिरूपनानाविभूतिषु विशेषेणावस्थितो न स्यात्तदा सर्वं ब्रह्माण्डं स्ववशे स्थापयितुमपि न शक्नुयात् । किन्तु सर्वमयत्वादिनैव सर्वनियन्ता भवति ॥ १७ ॥

भाषार्थः–(यो ज्ञः सर्वगोऽस्य भुवनस्य गोप्ता) जो ज्ञानस्वरूप सर्वव्याप्त इस सब ब्रह्माण्डका रक्षक (स तन्मयो ह्यमृतईशसंस्थः) वह उस २ आकाशादि पदार्थ में उसी २ के रूप से विद्यमान अथवा ज्योतिःस्वरूप मृत्यु से रहित उस २ समुदाय में प्रधानता को प्राप्त ऐश्वर्य वाली राजादि विभूतियों में विशेषरूप से अवस्थित ऐसा रहता हुआ ही ईश्वर (अस्य जगतो नित्यमेवेशे) इस जगत् का नित्य ही नियन्ता अपने नियम में चलाने वाला होता है किन्तु (ईशनायान्यो हेतुर्न विद्यते) अनेक विभूतियों में विशेषरूप से अवस्थित रहने आदि से भिन्न सर्वनियन्ता होने के लिये अन्य कोई हेतु नहीं है अर्थात् गीतामें लिखा है कि मैं ईश्वर मनुष्यों में राजा, मृगों में सिंह हूं, इत्यादि

प्रत्येक समुदाय में प्रधानरूप से ईश्वर ही विद्यमान रहता हुआ नियन्ता होता है ॥

भा०—यदि परमेश्वर सर्वमय, अविनाशी, ज्ञान स्वरूप, सब में व्याप्त, चराचर का रक्षक और रागादि रूप अनेक विभूतियों में विशेष रूप से अवस्थित न होता तो सब ब्रह्माण्ड को अपने वश में नहीं रख सकता इस कारण सर्वमय होने आदि कारण से ही सर्वनियन्ता हो रहा है ॥१७॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१८॥

अ०—यः परमेश्वरः पूर्वं प्रत्येकसर्गारम्भे सर्ववेदान् ज्ञातुं योग्यं पुरुषविशेषं विदधाति सृजति। यस्तस्मै वेदांश्च प्रहिणोति प्रगमयति प्रकर्षेणाग्न्यादिद्वारा प्रापयति तमेवात्मबुद्धिप्रकाशं स्वस्य सूक्ष्मातिविशारदबुद्धिद्वारैव प्रकाशो बोधो यस्य भवति तादृशं देवं द्योतनशीलमीश्वरं शरणं सर्वाश्रयभूतं मुमुक्षुर्वै मुमुक्षुः सन्नेवाहं प्रपद्ये प्राप्नोमि ॥

भा०—मामपि स ईश्वरो ब्रह्मवद् वेदतत्त्वज्ञानपात्रं कुर्यात्तस्य शरणागत्या वेदतत्त्वं

ज्ञातुं योग्योऽहं भवेयम् । यो मुमुक्षुः सन्नेव तं सर्वस्य शरणं प्रपित्सते तस्यैव तत्सम्बन्धेन शुद्धा सूक्ष्मा च बुद्धिस्तस्य प्रकाशिका बोधिका भवति सत्यामेव च तादृशमनीषायां वेदस्य मर्म ज्ञातुं स शक्नोति तस्मान्मुमुक्षुणा सतैव पुरुषेण स आश्रयितव्य इति ॥१८॥

भाषार्थः (यः पूर्वं ब्रह्माणं विदधाति) जो परमेश्वर प्रत्येक कल्प सृष्टि के आरम्भ में सब वेदों को जानने की योग्यता रखने वाले ब्रह्मा नामक पुरुष को रचता (यो वै तस्मै वेदांश्च प्रहिणोति) तथा जो ही ईश्वर उस ब्रह्मा के लिये वेदों को अग्नि आदि के द्वारा अच्छे प्रकार पहुंचाता है (आत्मबुद्धिप्रकाशं तं ह शरणं देवम्) अपनी सूक्ष्म अति शुद्ध निर्मल बुद्धि द्वारा ही जिस को मनुष्य जान सकता है उसी प्रसिद्ध सब के आश्रयरूप आधार शरण लेने योग्य दिव्य प्रकाशमय ईश्वरको (अहं मुमुक्षुर्वै प्रपद्ये) मैं संसारके अगाध दुःखों से छूटने की इच्छा रखता हुआ ही प्राप्त होता हूं ॥

भा०—मुझ को भी वह ईश्वर वेद का तत्त्व जानने योग्य करे उस की शरणागति द्वारा वेद के तत्त्व को जानने योग्य मैं होऊं । इस प्रकार जो दुःखों से छूटने की इच्छा रखता हुआ ही उस सब के आश्रय [आसरे] को प्राप्त होना चाहता है उसी को, ईश्वरोपासना द्वारा सूक्ष्म निर्मल हुई बुद्धि उस को बताने प्रकाशित करने वाली होती और वैसी बुद्धि होने पर ही मनुष्य वेद का मर्म जान सकता है इस से मुमुक्षु होकर ही मनुष्यको ईश्वरका शरण लेना चाहिये ॥ १८ ॥

निष्कलं निष्क्रियꣳशान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। अमृतस्य परꣳसेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।१९।

अ०--अथ तस्य निर्गुणं स्वरूपमुच्यते निष्कलमंशांशिभावरहितं निष्क्रियं निर्विकारं शान्तमचलं कूटस्थं निरवद्यमनिन्द्यं निरञ्जनं निष्कलङ्कं दग्धेन्धनानलमिव सर्वथा शुद्धममृतस्य परं सर्वापेक्षया प्रकृष्टं सेतुं शरणं मुमुक्षुः सन्नेवाहं प्रपद्य इति पूर्वपद्येन साकमेवान्वयः॥

भा०—वस्तुतो निरवयवादिरूपस्यैव परमात्मनो ध्यानं बोधः शरणागतिश्चापारदुःखसमुद्रात्पारगमनाय यादृशं प्रधानं साधनं न तादृशमन्यत्सम्भवति सर्वस्थूलवस्तुषु तत्तदाकारेण साकारे सगुणेऽपि तस्य वास्तवं निर्गुणं स्वरूपं ध्यायेदित्यभिप्रायः॥१९॥

भाषार्थः—अब परमेश्वरका निर्गुण स्वरूप कहा जाता है-(निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्) अंशांशिभाव और क्रियाँ से होने वाला विकार जिस में नहीं ऐसे शान्तिमय अचल कूटस्थ सदा एकरस (निरवद्यं निरञ्जनम्) जिस में कोई अवगुण न होने से किसी को ग्लानि नहीं होती सब कलंकों

से रहित (दग्धेन्धनमिवानलम्) इँधन के जलचुकने पर जिस का धुआं मिट गया हो ऐसे अग्नि के समान सर्वथा शुद्ध ज्योतिः स्वरूप (अमृतस्य परं सेतुम्) और महाभयङ्कर मरणादि सम्बन्धी दुःखसागर के पार होनेके लिये सर्वोपरि सर्वोत्तम पुल रूप को मुक्ति की इच्छा रखता हुआ ही मैं प्राप्त होऊं यह पूर्वपद्य के साथ मेल वा अन्वय इस का भी जानो ॥

भा०—वस्तुतः निरवयवादि रूप ही परमात्मा का जानना, ध्यान करना वा उसका शरण लेना अपारदुःखसागर से पार होने के लिये जैसा बड़ा मुख्य साधन है वैसा अन्य कोई साधन नहीं हो सकता अर्थात् स्थूल पदार्थों में उस २ के रूप से विद्यमान सगुण साकार परमेश्वर में भी उस के वास्तविक निर्गुण स्वरूप का चिन्तन करे ॥१९॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः । तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥२०॥

अ०-यदा यस्मिन् स्थूलसर्गाभावकाले प्रलये चर्मवत्संकुचिताः सन्तो मानवा जीवा आकाशमविच्छिन्नं शून्यदशापन्नमिव प्रकृत्याख्यं तत्त्वं वेष्टयिष्यन्ति तदाश्रयं करिष्यन्ति तदा देवमीश्वरमविज्ञाय स्थूलदेहेन्द्रियभोग्यस्य दुःखस्य प्रलयावधि सापेक्षोऽन्तो नाशो भविष्यति ॥

भा०—प्रलयकाले रात्रौ स्वप्नावसरइव मूर्छितोन्माददशायामिव वा स्थूलदेहसम्बद्धानां विषयेन्द्रियसन्निकर्षोत्पन्नानां च दुःखानामभावो जायते । तदानीं जातेऽपि दुःखाभावे परमात्मज्ञानप्रकाशाभावादानन्दानुभवो न जायते । तस्मान्नासौ मुक्तिसुखे परिगणनमर्हति ॥

भाषार्थः—(यदा चर्मवन्मानवा आकाशम्) जब स्थूल सृष्टि के न रहने पर प्रलय के समय अग्नि में चामके समान संकुचित हुए मानव नाम जीवात्मा आकाश के तुल्य अविच्छिन्न शून्य दशा को पहुंचने के तुल्य हुए प्रकृति वा माया नामक तत्त्व का (वेष्टयिष्यन्ति) आश्रय करेंगे अर्थात् स्थूल शरीरादि के न रहने पर माया के अवलम्बसे जब जीव ठहरेंगे (तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति) तब प्रकाशरूप अपने वास्तवस्वरूप ईश्वरको न जान कर भी स्थूल शरीर और इन्द्रियों से भोग में आने वाले दुःखों का प्रलय समय तक के लिये सापेक्ष नाश हो जावेगा ॥

भा०—रात में बराबर सोते समय के समान वा मूर्छित उन्माद (बेहोश) दशा के तुल्य स्थूल शरीरसे सम्बन्ध रखने वा विषय और इन्द्रियोंके संयोग से प्रतीत होने वाले दुःखों का प्रलयके समय अभाव हो जाता है । तब दुःखों का अभाव होने पर भी अपने असली स्वरूप ईश्वर का बोध न होनेसे अर्थात् ईश्वर के सम्बन्धका ज्ञान प्रकाश न होने से आनन्द का अनुभव नहीं होता इसी से मुक्ति सुख में उस को नहीं गिन सकते ॥ २० ॥

तपःप्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म-ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ॥ अ-त्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रो-वाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥ २१॥

अ०—बहिरन्तःकरणानां वशीकरणेन द्वन्द्वसहनशक्तिरूपात्तपसईश्वरप्रसादाच्च ब्रह्म विद्वानात्मतत्त्वं विजानन् श्वेताश्वतरोऽथ स्वानुभवदृढत्वानन्तरमृषिसङ्घजुष्टमृषीणां महर्षिब्रह्मर्षीणां समूहेनानन्तसुखावाप्तये जुष्टं सेवितं परमं पवित्रं ब्रह्मात्याश्रमिभ्यः पूज्यप्रशस्ताश्रमवासिभ्यस्तपस्विभ्यः संन्यासिभ्यः सम्यक् प्रोवाच ॥

भा०—तपसआधिक्याद्दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितादीश्वरप्रणिधानविशेषाच्च सर्वदा सर्वएव जनो ब्रह्म ज्ञातुमर्हति । यश्च सम्यक्तया यज्जानाति सएव तदन्यस्मै वक्तुं शक्नोति च तस्माद् ब्रह्मजिज्ञासुना प्रबलं तपईश्वरप्रणिधानं च दीर्घकालावधि श्रद्धया निष्ठया तत्परतया च कार्यम् ॥ २१ ॥

भावार्थः-(तपःप्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म विद्वान् ह श्वेताश्वतरः) बाहर भीतरके इन्द्रियोंको वशीभूत करने द्वारा शीतोष्णादि सहन रूप तप बलसे और ईश्वरकी प्रसन्नता वा कृपासे आत्मतत्त्व को जानते हुए श्वेताश्वतर नामक प्रसिद्ध तपस्वी ऋषिने (अथ ऋषिसङ्घजुष्टं परम पवित्रम्) अपने अनुभव रूप ज्ञान को दृढ़ करने पश्चात् ब्रह्मर्षि महर्षियों के समुदाय ने अनन्त सुख प्राप्तिके लिये सदा जिसका सेवन किया है ऐसे परम पवित्र आत्मस्वरूप का (अत्याश्रमिभ्यः सम्यक् प्रोवाच) अत्यन्त पूजनीय तपोवन के निवासी परमहंस संन्यासि तपस्वियोंके लिये सम्यक् वर्णन वा उपदेश किया ॥

भा०-दीर्घकाल तक श्रद्धा वा आदर के साथ सेवन किये अधिक प्रबल तप से तथा तन मन धन लगाके अधिक काल तक श्रद्धा के साथ निरन्तर की परमेश्वर की विशेष भक्ति से सब काल में सभी मनुष्य आत्मतत्त्व को जान सकते हैं। जो मनुष्य सम्यक् प्रकार से जिस को जान लेता है, वही अन्य को उपदेश द्वारा जता सकता है । इसलिये आत्मतत्व के जिज्ञासुको इन्द्रिय निग्रह पूर्वक उग्र तप और ईश्वर भक्ति विशेष समारोह से करनी चाहिये ॥ २१ ॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥२२॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते

कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः । प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२३॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्समाप्ता ॥

अ०—वेदान्तउपनिषत्सु ब्रह्मर्षिभिर्विदितवेदितव्यैः परावरज्ञैः पुराकल्पे पूर्वेऽतिप्राचीने सर्गारम्भकाले परमं गुह्यं गोप्यानामपि गोप्यतममात्मतत्त्वं प्रचोदितं प्रोक्तं तदप्रशान्तायापुत्रायाशिष्याय वा पुनर्न दातव्यम् । नास्ति शिष्यः पुत्रश्चाऽस्य यश्च शास्तुं योग्यो नास्ति तादृशायोभयस्मै न देयमपि तु देवईश्वरे यस्य परा भक्तिर्यथेश्वरे तथैव गुरौ यस्य भक्तिः श्रद्धाऽचाञ्चल्यमनन्यमनस्कता चास्ति । अथवा गुरुरूपेणावतीर्णमीश्वरं स्वगुरुविग्रहं यो मन्येत । श्वेताश्वतरेण महात्मना कथिता एतस्यामुपनिषद्युक्ता अर्थास्तस्य महात्मनः प्रकाशन्ते तेन सम्यग्विज्ञायन्ते ॥

भा०—निवातप्रदीपवद्विषयवायुनाऽचलितरागद्वेषरहितचेतसा यादृशो विषयसमाव-

धिविचारः सम्यग्ज्ञायते न ताद्दशाश्चलचित्तेनेति यश्चाप्रशान्तोऽपुत्रोऽशिष्यो वा नाऽसौ शास्त्रस्य मर्म ज्ञातुं शक्नोति । यथा दुष्टसङ्गेन दोषा आयान्त्येवमध्यापनादावप्रशान्तादिसङ्गेनाशान्त्यादिदुःखहेतुदोषागमनसम्भवः परिश्रमानर्थक्यं तु दोषोऽस्त्येवातस्ताद्दशेभ्यो ब्रह्मविद्यादानं प्रतिषिद्धं शान्तिश्रद्धादिगुणान्विताय च दानमुत्तमामिति सर्वमवदातम् ॥२३॥

भाषार्थः–(पुरा कल्पे वेदान्ते परमं गुह्यं प्रचोदितम्) पूर्व बीते अतिप्राचीन सृष्टारम्भ काल में वेद के सिद्धान्तरूप उपनिषदों के बीच पूर्वापर के जानने वाले साक्षात् प्रबल ज्ञानी ब्रह्मर्षि लोगों ने ईश्वर सम्बन्धी अत्यन्त गूढ़ विषय कहा है जिस को सर्वसाधारण लोग सहज में नहीं समझ सकते इसीलिये (नाप्रशान्ताय नापुत्रायाशिष्याय वा पुनर्दातव्यम्) जिस को शान्ति वा लोभादि निवृत्ति द्वारा वैराग्य नहीं हुआ (लोभी–तृष्णा की नदी में बहने वाला कभी शान्त स्थिर स्वस्थ नहीं रह सकता] वा जिस के पुत्र न हो या जो किसी का पुत्र न हो अर्थात् व्यभिचार से उत्पन्न होने के कारण जिस का पिता कोई खास न हो— ऐसे को तथा जो धर्मनिष्ठ सभ्य गुरुभक्त मनुष्य नहीं ऐसे को वेदान्तका उपदेश न देवे। परन्तु (यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ) जिस योग्य श्रद्धालु शिष्यकी अनेक दिव्यता रूपधारी परमेश्वर में प्रबल भक्ति हो और जैसी ईश्वर में वैसी ही भक्ति गुरुके शरीर में हो या गुरुको जो ईश्वरका अवतार ही

जानता हो जितेन्द्रिय हो लोभ लालच रहित हो (कथि-ताएतेऽर्थास्तस्य महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते) इस उपनिषद् में श्वेताश्वतर महर्षि ने कहे ये विषय उसी ईश्वरभक्त गुरुभक्त महाशय के हृदय में प्रकाशित होते उसी महात्मा के हृदय में प्रकाश उत्पन्न करते हैं ॥

भा०—वायु रहित स्थान में रक्खे हुए जलते दीपक के तुल्य काम क्रोध लोभादि विषयवायु से न डुलाये हुए चित्त से जैसा सूक्ष्म विषय का मर्म पर्यन्त विचार वा बोध हो सकता है। वैसा चञ्चल चित्तसे कदापि नहीं होता । इसी कारण जो अशान्त अपुत्र और अशिष्य है वह शास्त्र के मर्म को कदापि नहीं जान सकता । जैसे दुष्ट के सङ्ग से दोष लगते हैं वैसे ही उपदेश वा पढ़ाने आदि में अशान्तादि के सङ्ग से ज्ञानीको दुःख कष्ट वा दोष लगें यह सम्भव है और परि-श्रम का व्यर्थ होना भी दोष ही है इसलिये वैसोंको विद्या दान करना निषिद्ध किया है । और श्रद्धालु महाशय गम्भीर शान्त सुशील को विद्या देना उत्तम है ॥ २३ ॥

इति ब्राह्मणसर्वस्वमासिकपत्रसम्पादकेन भीमसेनशर्म्मणा निर्मिते श्वेताश्व-तरोपनिषद्भाष्ये षष्ठोऽ

ब्रह्मप्रेस इटावाकी सर्वोत्तम पुस्तकें,

आर्यमतनिराकरणप्रश्नावली ।

सनातनधर्मी सज्जनों को विपक्षियों से शास्त्रार्थ और शंकासमाधान करने के लिये जैसी पुस्तक की आवश्यकता है यह वैसी ही पुस्तक है इसका प्रथम संस्करण छपते ही छूमन्तर हो गया था, मांगों की भरमार देखकर इस का द्वितीय संस्करण छपाना पड़ा अब इस में प्रश्नों की संख्या भी अधिक बढ़ा दी गई है । प्रश्नों की संख्या अब ४०० सौ से ऊपर पहुंच गई है इस पुस्तक को हाथ में लेकर आप आर्य-समाजियों के कट्टर से कट्टर पण्डित को बात की बात में पछाड़ सकते हैं, इस में जो प्रश्न छापे गये हैं उन का जवाब आर्यसमाजी एक जन्म में तो क्या सात जन्मों में भी नहीं दे सकते मूल्य सिर्फ ।)

दयानन्दमतविद्रावण ।

यह पुस्तक भी आर्यसमाजियों के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के खण्डन में बनायी गयी है पुस्तक की भाषा बड़ी रोचक और दिलचस्प है इसमें जिस खूबसूरती के साथ थोड़े ही में सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदर की गई है वह देखने योग्य है पुस्तक देवरी जि० सागर निवासी ला० भवानीप्रसाद नम्बरदार की बनाई हुई है मू० सिर्फ ।) आना है ।

भास्कराभासनिवारण ।

आर्यसमाजियों के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का खण्डन जिस खूबसूरती के साथ मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने किया है वह किसी से छिपा नहीं है पर यह देखकर किसे शोक न होगा कि ऐसी उपयोगी पुस्तक का खण्डन भी मेरठ के समाजी पं० तुलसीराम जी ने करने का

दुस्साहस किया था इसमें स्वामी तुलसीराम के बनाये उसी भास्करप्रकाश की आलोचना की गयी है, यद्यपि इस में पूरे भास्करप्रकाश का खण्डन नहीं है तथापि जितना लिखा गया है उतने से यह बात पाठकों को विदित हो जायगी कि प० तुलसीराम ने अपनी पुस्तक में किस चालाकी से काम लिया है और किस तरह की परस्पर विरुद्ध बातें लिखीं हैं हम भास्करप्रकाश के पूरे २ खण्डन की एक पुस्तक शीघ्र छपाने के उद्योग में हैं तब तक पाठकों को इसी से सन्तोष करना चाहिये । मू० ।=)

विधवाविवाह मीमांसा ।

इस पुस्तक में विधवा विवाह की आलोचना की गई है जगत्प्रसिद्ध प० भीमसेन जी शर्मा की लेखनीकी करामात कौन नहीं जानता, विधवा विवाह के बारे में विपक्षियोंकी शङ्काओं का निराकरण करके शास्त्रों की ठीक २ व्यवस्था लगाने वाला यह पुस्तक अपने ढंग में एक ही है । इस में तीन प्रकरण हैं १—वेदमन्त्रार्थप्रकरणम् । इस में विधवावि-वाह और नियोग के पक्ष में जितने वेदमन्त्र आर्यसमाजी आदि विधर्मी पेश करते हैं उन सब का भाष्य करके सिद्ध कर दिया गया है कि वेद में कहीं भी विधवा विवाह या नियोगका गन्ध नहीं है, दूसरा प्रकरण स्मृतिप्रमाण व्यवस्था पर इस में स्मृति सम्बन्धी प्रमाणों की आलोचना है ती-सरा यौक्तिक प्रकरण है इस में जो दलीलें विधवाविवाह के विषय में विपक्षी पेश करते हैं उन का समाधान है । इस बार के एडीशन में कई एक अन्य प्रमाण जो विपक्षी पेश करते हैं उनका समाधान भी किया गया है । मूल्य ।=)